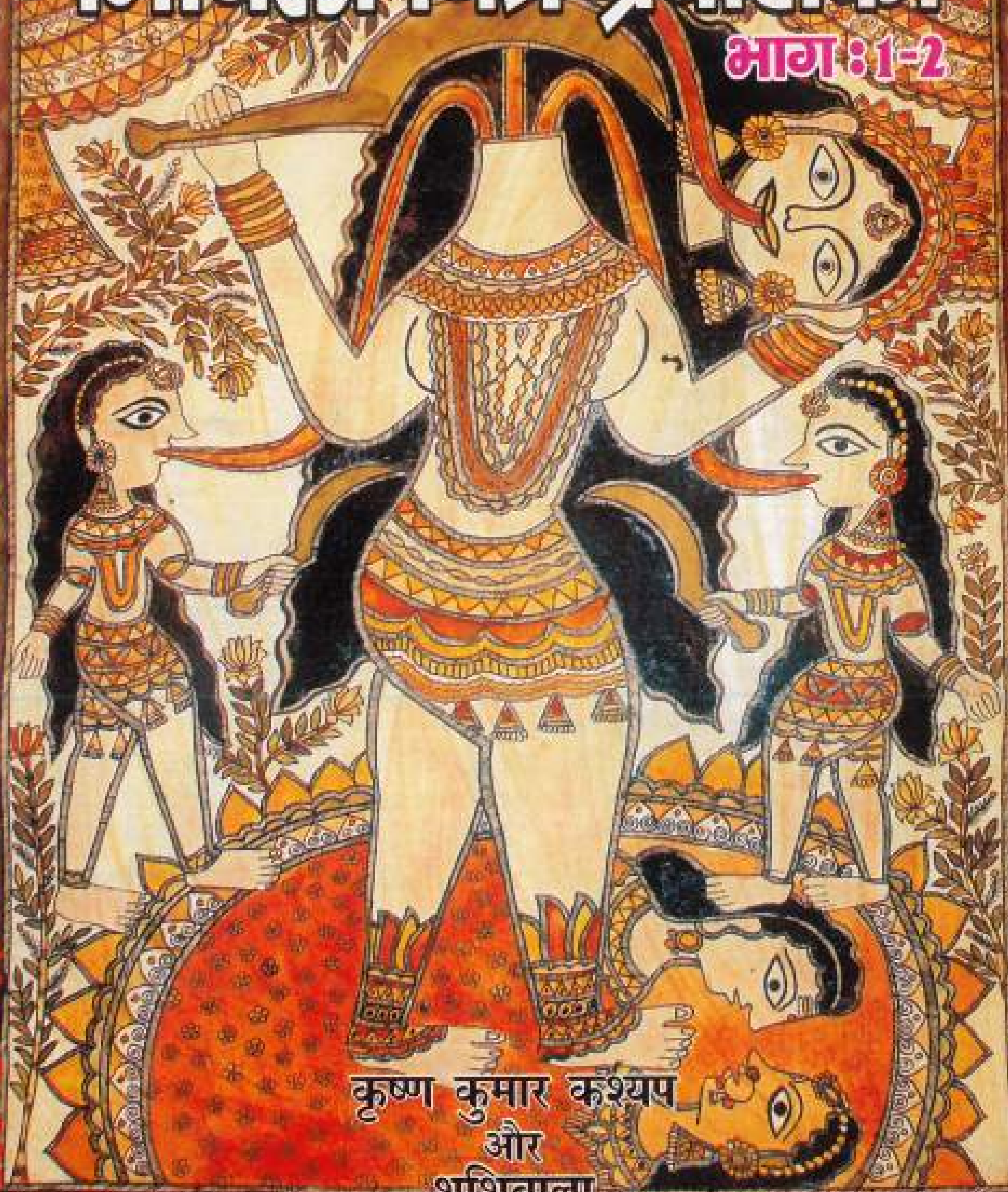
मिथिला चित्र प्रवेशिका

भाग : 1-2



कृष्ण कुमार कश्यप
और
शशिवाला



मिथिला चित्र प्रवेशिका

(भाग 1-2)

लेखक :
कृष्ण कुमार कश्यप
और
शशिबाला

भारती विकास मंच
बरहेता, लहेरिया सराय, दरभंगा बिहार - 846001

प्रकाशक :

भारती विकास मंच
बरहेता, लहेरिया सराय, दरभंगा
बिहार – 846001

मुद्रण वर्ष : अक्तूबर, 2009

सम्पर्क-सूत्र : (मोबा.) 9931665939

मूल्य : तीन सौ रुपये मात्र।

मुद्रक : बी.के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

भूमिका

'मिथिला चित्र प्रवेशिका' का मुद्रित रूप काफी प्रतीक्षा के बाद अब आपके हाथों में है। यह काम बहुत पहले हो जाना चाहिए था, किन्तु अभी तक **भारती विकास मंच, बरहेता** में ''जीवन और शिक्षण'' की हमारी योजना के तहत प्रशिक्षण ले रही छात्राओं के लिए इन पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियों से काम चलता रहा। बिना मुद्रित हुए ही इन पुस्तकों ने हजारों स्त्रियों को आर्थिक जीवन में लगाने में कामयाबी पायी, यह सोच कर मन को सन्तोष होता है।

मैंने अपने शैशव काल में एक संकल्प के साथ काम करना प्रारम्भ किया। संकल्प यह कि **''जीवन और शिक्षण''** के अपने कार्यक्रम में कभी किसी छात्रा से पारिश्रमिक नहीं लूँगा और साधन के लिए कभी सरकारी या गैर सरकारी भ्रष्ट व्यवस्था के आगे घुटने नहीं टेकूँगा। यह दोनों ही संकल्प आज के समय के लिए प्राणघाती है, और हमारे साथ भी कुछ वैसा ही हुआ। लेकिन भीतर और बाहर के चौतरफा हमलों के बाद भी हम अपने लक्ष्य तक पहुँचने में कामयाब रहे। आज मिथिला के गाँवों में, सभी जाति और धर्म की स्त्रियाँ मिथिला चित्रशैली में वस्त्रांकन के काम में भरपूर जुटी रहती हैं और सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में उनका मूल्यांकन निठल्ला कह कर नहीं होता है। गाँव-गाँव में शिक्षित-अशिक्षित बालिकाएँ और पारिवारिक स्त्रियाँ रोजगार के इस क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं, किन्तु यह बहुत कम ही लोगों को ज्ञात होगा कि इस सम्पूर्ण उद्योग के टिके रहने या इसके विकास के लिए हमारी सरकारें बहुत उत्साही नहीं रही हैं। सब दिन से ऐसा ही होता आया है। सत्ता किसी ऐसे व्यक्ति के काम की सराहना नहीं कर सकती है जो स्वयं अत्यन्त साधारण पृष्ठभूमि से आता हो। यह उपेक्षा तब और बढ़ जाती है जब वह काम भी उपेक्षितों या वास्तविक दलितों के लिए किया गया हो। जो भी हो, हमारा खुद का जीवन भले संकटों से जूझते बीता हो, किन्तु लोग कहते हैं कि हमने जीवन में एक बड़ी सफलता पाई, और यही सफलता हमारे जीवन की सार्थकता है।

बेशक, मिथिला की यह कला सन् 1966-'67 में पहली बार मधुबनी जिले

के जितवारपुर और रांटी गाँवों से बाहर व्यवसाय के लिए निकली। महज तीन-चार वर्षों में ही यह कला भारत की सीमा लाँघ गई। यूरोप और अमेरिका के लोग इस अनोखी चित्रकला को आँख फाड़-फाड़ कर देखने लगे। उन्हें तब और आश्चर्य हुआ, जब उन्हें ज्ञात हुआ कि इन चित्रों के रचनाकार मूलतः स्त्रियाँ हैं। उन्हें लगा, इन स्त्रियों के चित्र पिकासो के चित्रों से कहीं आगे हैं। लेकिन देश-विदेश तक फैली उस नये परिचय के साथ एक गलत नामाकरण भी फैला। अदूरदर्शी सरकारी पदाधिकारियों ने इस कला को **"मधुबनी पेन्टिंग"** कह कर मिथिला के शेष क्षेत्र के साथ बहुत बड़ा अन्याय किया। मिथिला से बाहर के लोग यह मानने को तैयार ही नहीं होते थे कि यह कला पूरे मिथिला की है, मधुबनी जिसका एक भाग है। इस गलत नामाकरण से शेष मिथिला और मधुबनी को भारी नुकशान उठाना पड़ा। एक ओर सरकारी और स्थानीय प्रयास इस कला को 'मधुबनी कला' के रूप में स्थापित करने का तो दूसरी ओर हमारे जैसे कुछ लोगों का यत्न इसे **"मिथिला चित्रकला"** कहने की ओर रहा है। इसी क्रम में हमें लगा कि यदि इस कला को नयी समृद्धि से संस्कारित किया जाय तो सम्भव है कि गलत नामाकरण की भूल से इस कला को उबारा जा सके।

परम्परा की कोख से उपजी इस कला में 1966 से पहले व्यवसाय नहीं जुड़ा था। सन 1970 में पहली बार भारत सरकार ने इस कला को लोकचित्र की मान्यता प्रदान की और मधुबनी में अपना विपणन केन्द्र खोला। अल्प समय में ही यह कला अन्तर्राष्ट्रीय कला - बाजारों में अपनी एक पहचान बना सकी। देश-विदेश से कला-प्रेमी और व्यवसायी मधुबनी आने लगे। लगा कि कला का यह उद्योग कुछ ही समय में मिथिला की आर्थिक दशा बदल देगा, किन्तु सब कुछ मधुबनी के एक सीमित भाग में ही सिकुड़ा रहा। चित्र-उत्पादन में भी गुणात्मक विकास का प्रयास नहीं हुआ। दूसरी ओर, इस व्यवसाय में मात्र दो उच्च जाति की स्त्रियाँ ही संलग्न थीं, जिनके घरों में इन चित्रों का पारम्परिक उपयोग होता था। विडम्बना यह थी कि अधिकांश कलाकार अपनी ही सुन्दर रचना के बारे में ग्राहकों को ठीक से बता नहीं पाती थीं। इस परिस्थिति में न तो इसका बाजार बहुत व्यापक हो सकता था और न बाजार अधिक दिनों तक टिकाऊ रह सकता था। ऐसी परिस्थिति में मैंने निश्चय किया कि – इस कला से सम्बंधित शिक्षण-सामग्रियाँ विकसित की जाँय ; चित्रशैली में उपयोगिता

मूलक वस्तुओं (जैसे वस्त्रांकन) का उत्पादन और उनका बाजारीकरण किया जाय; देश-विदेश के लोगों को (जो इसके ग्राहक भी हैं) इस कला के गूढ़ शैक्षणिक पहलुओं से परिचित कराया जाय और लोककलाओं को वंचित लोगों की एक **कमाऊ शिक्षण-पद्धति** के रूप में विकसित किया जाय।

मिथिला लोकचित्र को वंचित लोगों की कमाई का माध्यम बनाने में भारती विकास मंच की सह-संस्थापिका श्रीमती शिवा और संस्था के गर्भ से उपजी विशिष्ट प्रतिभा श्रीमती शशिबाला, सुश्री अनीता दास, विनीता दास और संगीता गोरकी ने उल्लेखनीय कार्य किया। शशिबाला ने तो अपना तन, मन, धन सब अर्पित कर संस्था के कार्यक्रम को सफल बनाया किन्तु और भी बहुत स्त्रियों-बालिकाओं ने इस महान कार्य में सहयोग दिया, जिसे गिनाया नहीं जा सकता है।

यह सच है कि मधुबनी के क्षेत्र में सर्वप्रथम महिला कलाकारों ने मिथिला के अनुपम चित्रों को विश्व-पटल पर रखा और आज भी चित्र-निर्माण के कार्य में सर्वाधिक कुशल कलाकार मधुबनी में हैं, किन्तु यह भी सच है कि इस शैली में वस्त्रांकन का कार्य सर्वप्रथम भारती विकास मंच, बरहेता ने मधुबनी समेत शेष मिथिला में लागू किया और आज भी वस्त्रांकन के कार्य में सर्वाधिक कुशल और बहुसंख्यक कलाकार दरभंगा के क्षेत्र में हैं। इससे बाजार का सन्तुलन तो होता ही है, साथ ही एक माँग की कमी होने पर कलाकार दूसरी विधा में काम करने लगती हैं जिससे रोजगार का सन्तुलन भी बना रहता है।

इस दिशा मे सबसे बड़ी कमी अभी तक एक ऐसी पुस्तक के प्रसार की थी जो वस्त्र-चित्रांकन करने वाली महिलाओं को आकृतिक चित्र बनाने में प्रशिक्षित कर सके। **मिथिला चित्र प्रवेशिका** के प्रकाशन से अब इस समस्या का निदान हो सकेगा। मिथिला चित्र-शिक्षा, भाग -1 का प्रकाशन सन 1999 में ही हुआ था। इसके तुरंत बाद इस पुस्तक का प्रकाशन उचित था किन्तु सीमित साधन की स्थिति में हमें एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन आवश्यक लगा जो नव प्रशिक्षित या अल्प प्रशिक्षित बालिकाओं को भी वस्त्रांकन के रोजगागार में लगा सके। इस कारण हमें भाग 2 की जगह पर **मिथिला चित्र-कोर, भाग 3** का प्रकाशन करना पड़ा। बहरहाल, कहते हैं, देर आये दुरुस्त आये। अब आशा है कि इस पुस्तक से बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो सकेगी।

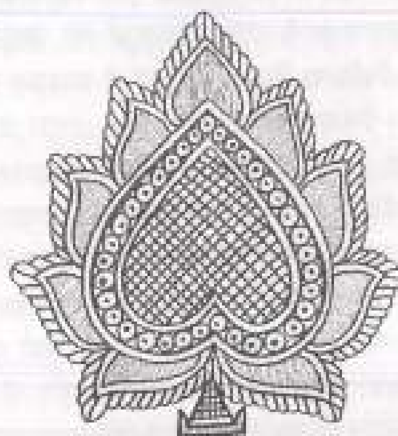
ईश्वर को बहुत-बहुत धन्यवाद कि उसने हमें अपने लक्ष्य के तहत यूरोप

के देशों तक मिथिला - कलाविद्या के प्रसार का अवसर प्रदान किया। अब आशा है कि इस पुस्तक का अंग्रेजी और इटालियन भाषाओं में भी अनुवाद हो सकेगा। मुद्रण के लिए अभी और भी कई हस्तलिखित पुस्तकें प्रतीक्षा में हैं, किन्तु मेरे जैसे साधनहीन साधक केवल आशा ही कर सकते हैं, किसी को वचन नहीं दे सकते। हमें प्रसन्नता है कि हमने मिथिला की स्त्रियों के हित और अपनी माटी की संस्कृति के संवर्द्धन में अपने जीवन को लगाया।

कभी-कभी मेरा मन भी उकताता है और लगता है कि मैंने जानबूझ कर संकट का जीवन मोल ले लिया। उस समय मेरी शिष्या और इस पुस्तक की सह-लेखिका शशिबाला मुझे समझाते हुए कहती है कि कोई भी कष्ट असल में कष्ट नहीं होता; कष्ट का अर्थ तो आपका निश्चय है। यदि आपने अच्छे काम का निश्चय किया है तो फिर कष्ट के लिए चिन्ता क्यों, वह तो कार्य की एक प्रक्रिया भर है। यह ऐसी बात है जिसे मैं आज तक ठीक से समझ नहीं पाया और मेरी शिष्या मुझे प्रेरणा देती है। भगवान उसकी ऐसी निर्मल बुद्धि बनाए रखे और मेरा भी धैर्य-वर्द्धन हो ताकि जनहित के यज्ञ में अपनी अन्तिम आहूति दे सकूँ।..... **शुभमस्तु !**

कृष्ण कुमार कश्यप

गांधी जयन्ती
2 अक्तूबर, 2009



अनुक्रम

ओनामासीधं

पाठ - 1

श्रीगणेशजीके इस मंत्र — ओनामासीधं का शुद्ध रूप ओं नमः सिद्धं है। परम्परागत शिक्षा-पद्धतिमें, शिशुओंको अक्षर-ज्ञान करानेके प्रथम चरणमें, श्रीगणेशजीके इस मंत्रके साथ गुरुजी भूमि पर उनके एक प्रमुख आयुध 'अंकुश' का चित्रण करते हैं। अबोध शिशु जैसे-तैसे, अपने ढंगसे, तरह-तरहके अंकुश बनाते हुए, तोतली बोलीमें ओं नमः सिद्धंको ओनामासीधं कहकर बोलते जाते हैं और इस प्रकार शिशुके विद्याभ्यासका श्रीगणेश होता है।

श्रीगणेशजीके अंकुशके कई रूप हैं —

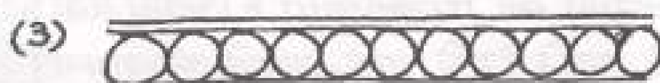
श्रीगणेशजी के अंकुशों का अभ्यास मूलतः छात्र की अंगुलियों में लोच लाने के लिए कराया जाता है। अंकुश का एक सरल रूप यह भी है —



अंकुश के इस रूप में ज्यामिति के वृत, अर्धवृत, सरल रेखा, लम्ब और क्षैतिज रेखा, पाँच चिन्हों का समावेश है। अतः प्राथमिक अभ्यास के तौर पर 'ज्यामिति के इन पाँच चिन्हों का अभ्यास कराना चाहिए। गणेशजी का यह अंकुश विश्व की समस्त लिपियों और सभी प्रकार के चित्रांकन का बीज-रूप है। इन पाँचों चिन्हों के विविध रूपों से परिचित छात्र सुगमता पूर्वक मिथिला-चित्र बना सकते हैं —















\ और — चिन्हों के प्रयोग 'कचनी' के रूप में चित्र के अलंकरण के लिए किया जाता है।

कचनी

पाठ-२

कचनी का महत्व मिथिला चित्र में वैसा ही है जैसा कि शरीर में प्राण का। कचनी के कारण चित्र प्राणवन्त लगते हैं। कचनी का अर्थ है 'कचना', महीन- महीन काटना।

मिथिला चित्रशैली की प्रमुख विशेषता है, दोहरी रेखा में कचनी। यहाँ कुछ सामान्य 'कचनी' के प्रयोग दिखाये जा रहे हैं।



ठढ़ कचनी/खड़ीकचनी

तिरछी कचनी



दोहरी कचनी



जंजीरा कचनी



लहरी कचनी

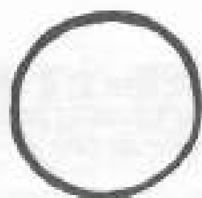
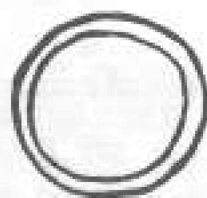


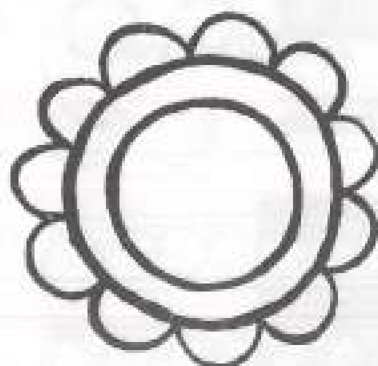
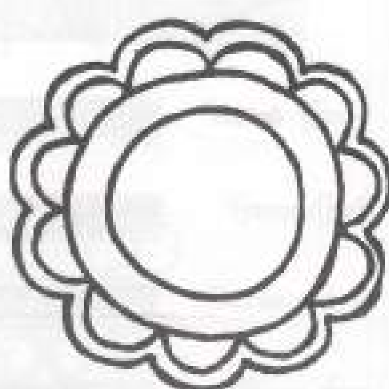


जल कचनी -
इसके कई रूप हो सकते हैं।

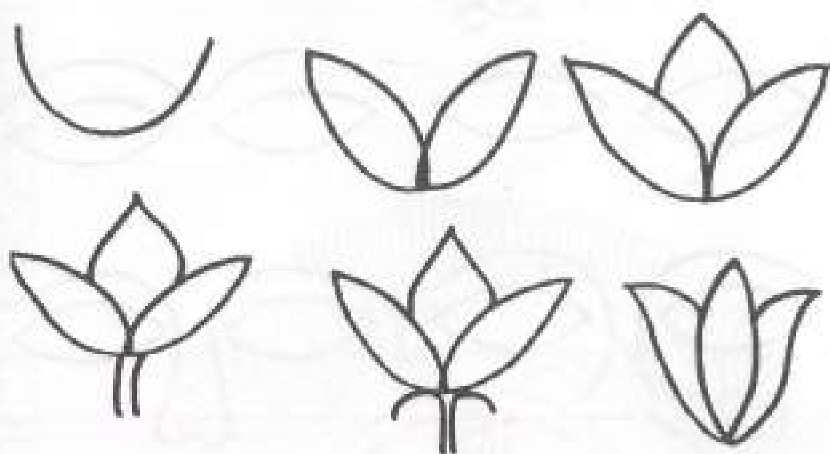
अनबुत, अधबुत और
कचनी के प्रयोग से मात्र कुछ सामान्य
चित्र बना सकते हैं।

पाठ-३


कमल





सूर्य के खण्ड

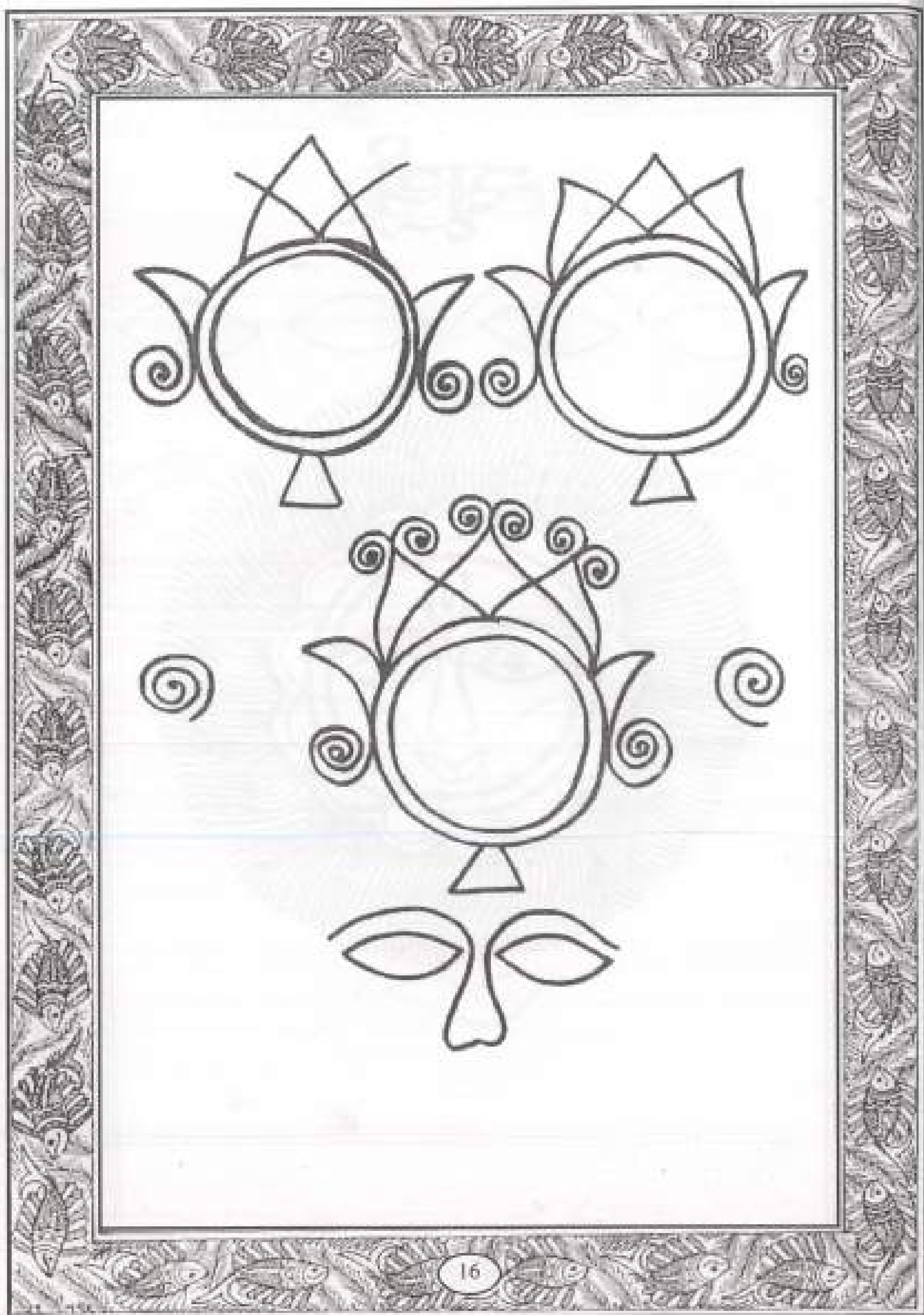






सूर्य

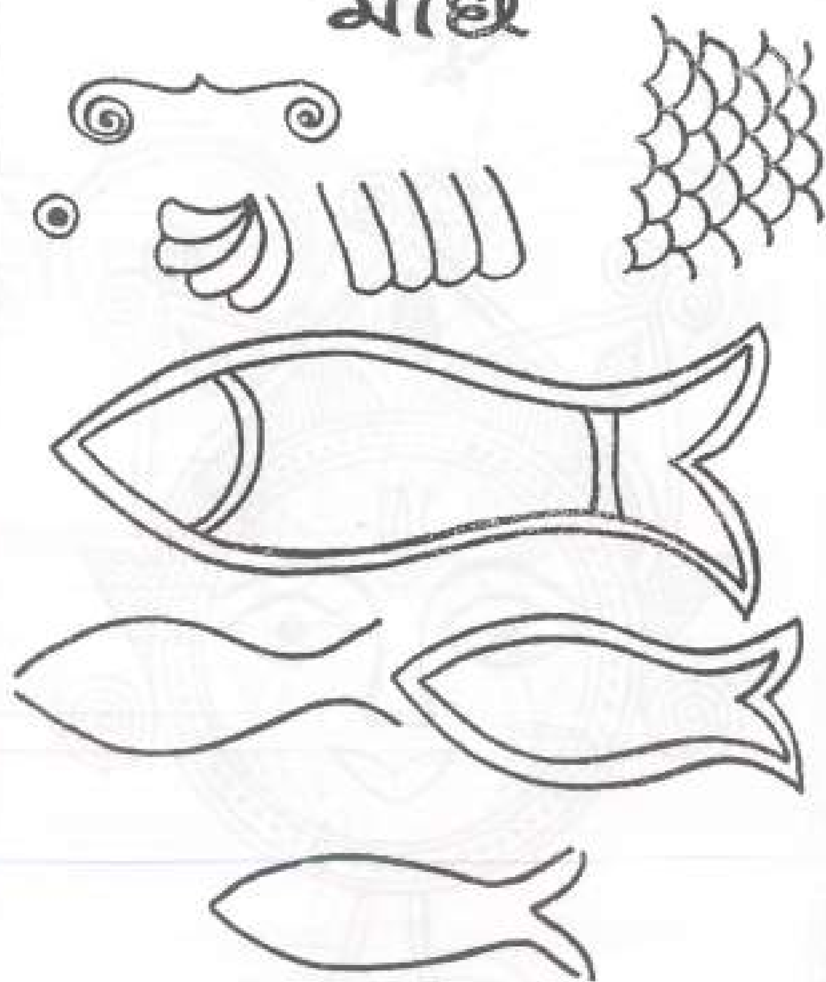




सूर्य

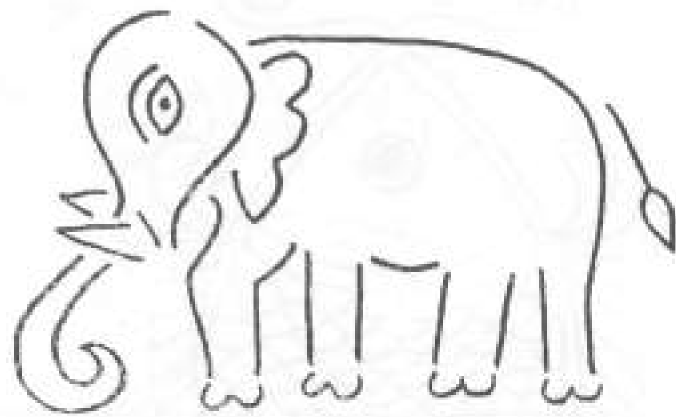


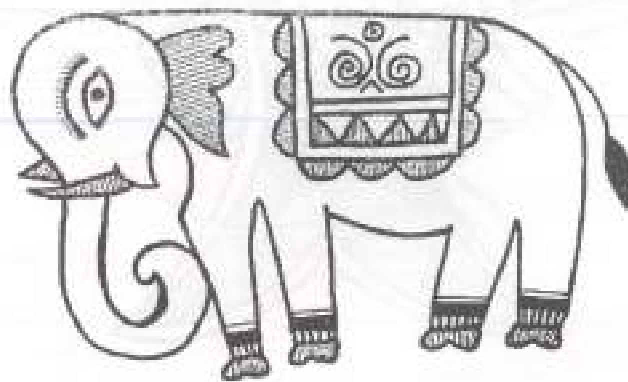
মাছ





हाथी





सुग्गा



मयूर



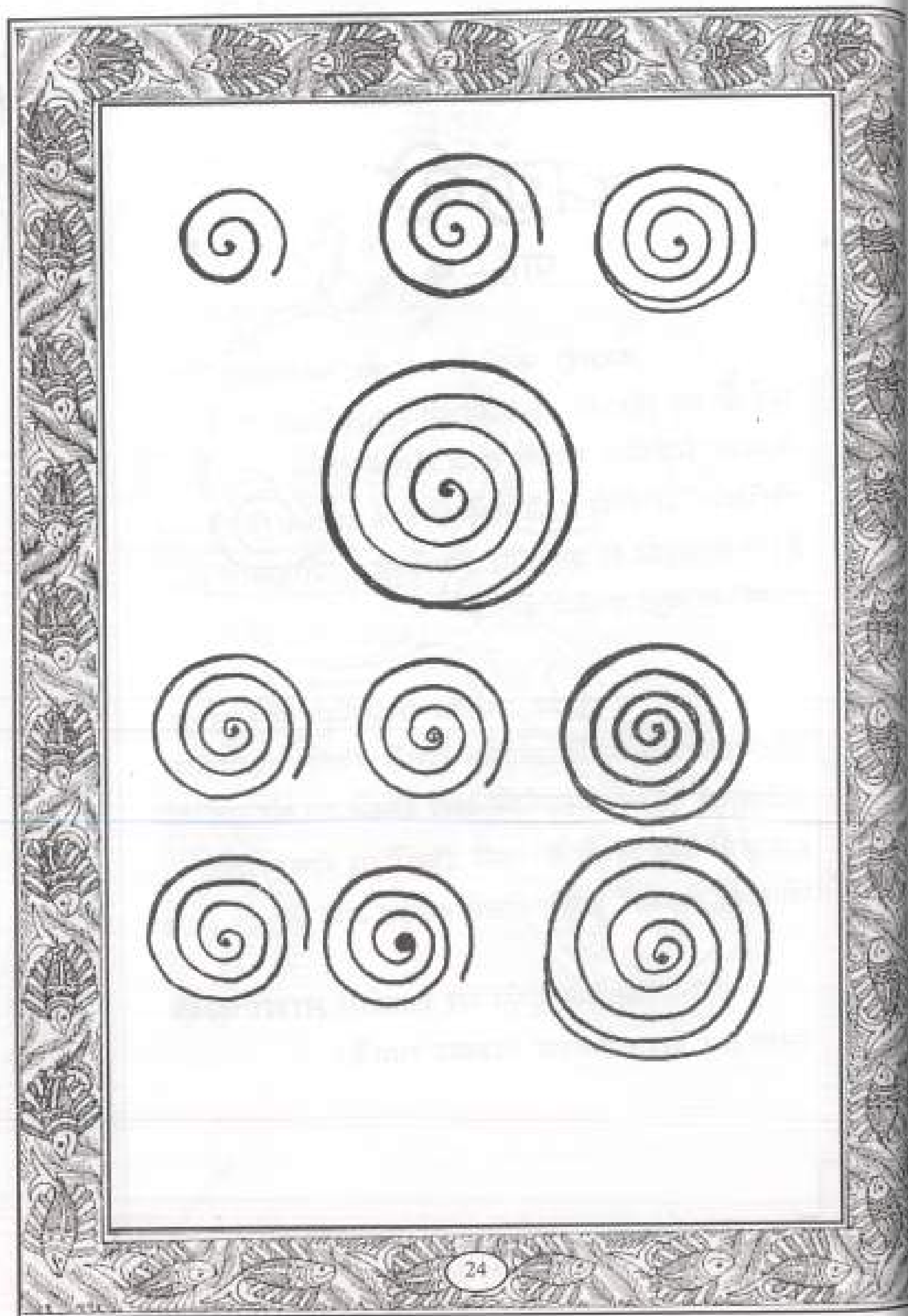
चकरी

पाठ- 4

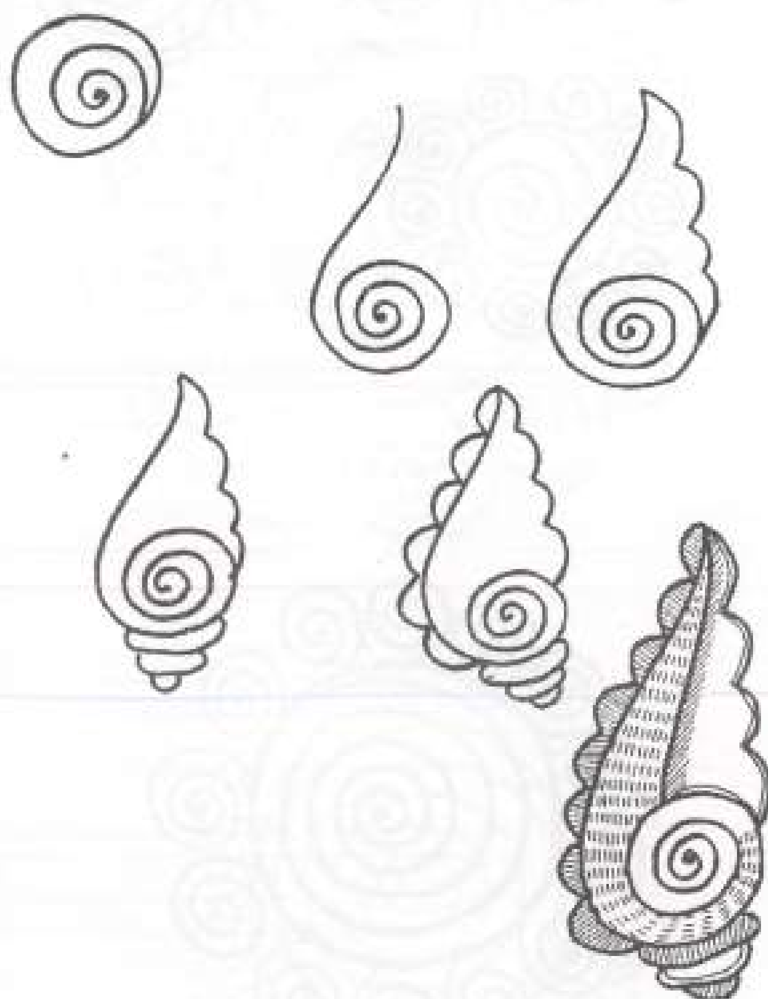
चकरी कहते हैं चक्रको, चक्केको, सूर्यको या साँपकी कुंडलीको। चकरीका उपयोग केवल मिथिला चित्रशैलीमें ही नहीं बल्कि भारतके विभिन्न भागोंमे रहनेवाले लोगोंके द्वारा भी किया जाता है। मिथिलाकी ही एक और चित्रशैली — **गोदनामें** — चकरीका बहुत उपयोग होता है।

चकरीका उपयोग भित्तिचित्र और देह पर गोदना चित्रके रूपमें अधिक होता है। मिथिलाके गाँवोंमें, विशेषतया दलित समुदायोंमें, आप दीवारों पर बने चकरीको सहज ही देख सकते हैं। कहीं दीवारों पर गोबर-माटी थोपकर, तो कहीं रंगसे चकरी बनाए जाते हैं।

आगेके पृष्ठों पर चकरीमें **तामा १०** लगा कर विस्तारीकरण दिखाया गया है।



चकरीसे शंख

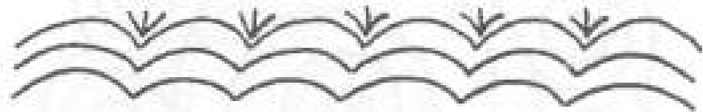




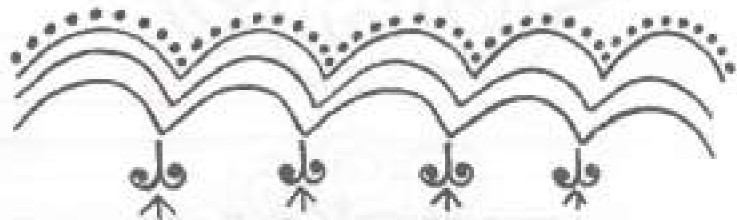


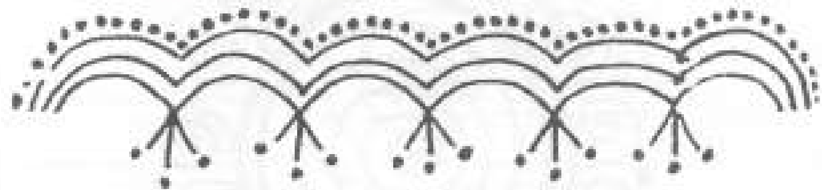


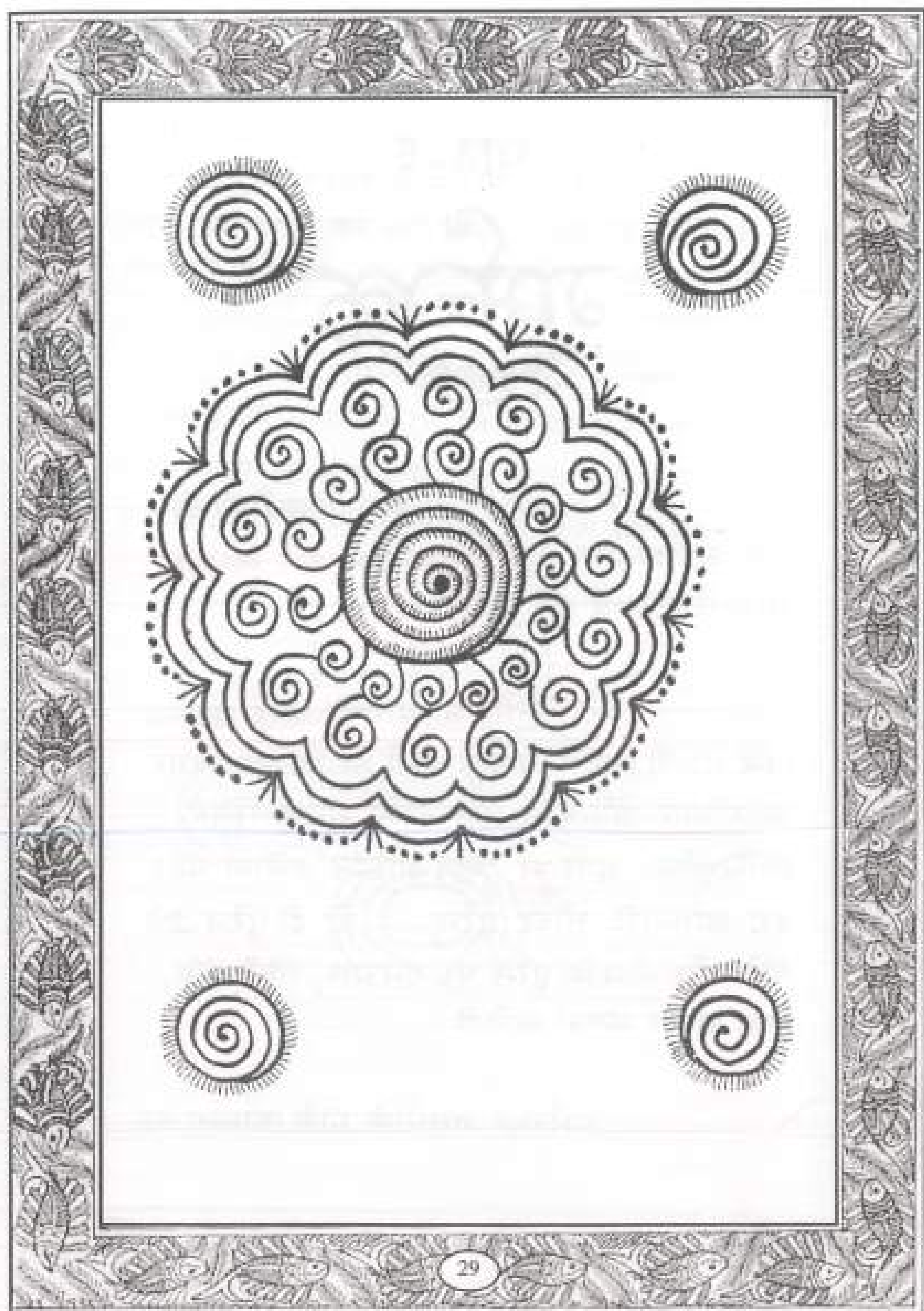
पिछले पाठोंका अभ्यास करते हुए
आपने कई तरहके अलंकरणोंसे परिचय प्राप्त किया। अब आप त्रिशूल ѱ, मेहराब ⁀⁀⁀, छोटे गोले ०, ताना ૭૯ और बिन्दु • के मेलसे चकरोंका व्यापक उपयोग करें।











पाठ-5

गर्भचक्र

गर्भचक्र मिथिला चित्रशैलीकी एक अतिप्राचीन कृति है, जो आजसे लगभग साठ-पैंसठ वर्ष पूर्व तक प्रयोगमें था।

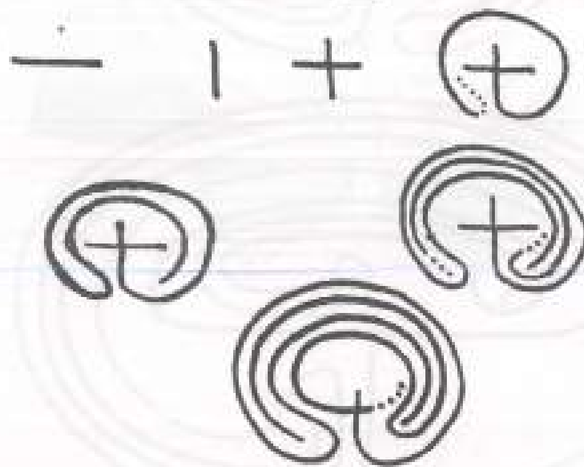
उन दिनो, परिवारकी कोई कन्या जब पहली बार रजस्वला होती थी तो उस अवसर पर परिवार और टोले-मुहल्लेकी सधवा स्त्रियाँ विधिपूर्वक भूमि पर **'ऋतु अरिपन'** बनाती थीं। इस अरिपनमें पाँच पुरैन — दो-दो पुरैन बाँये-दाँये और बीचके पुरैन पर गर्भचक्र, नीचे बाँस, फूल सहित बनाए जाते थे।

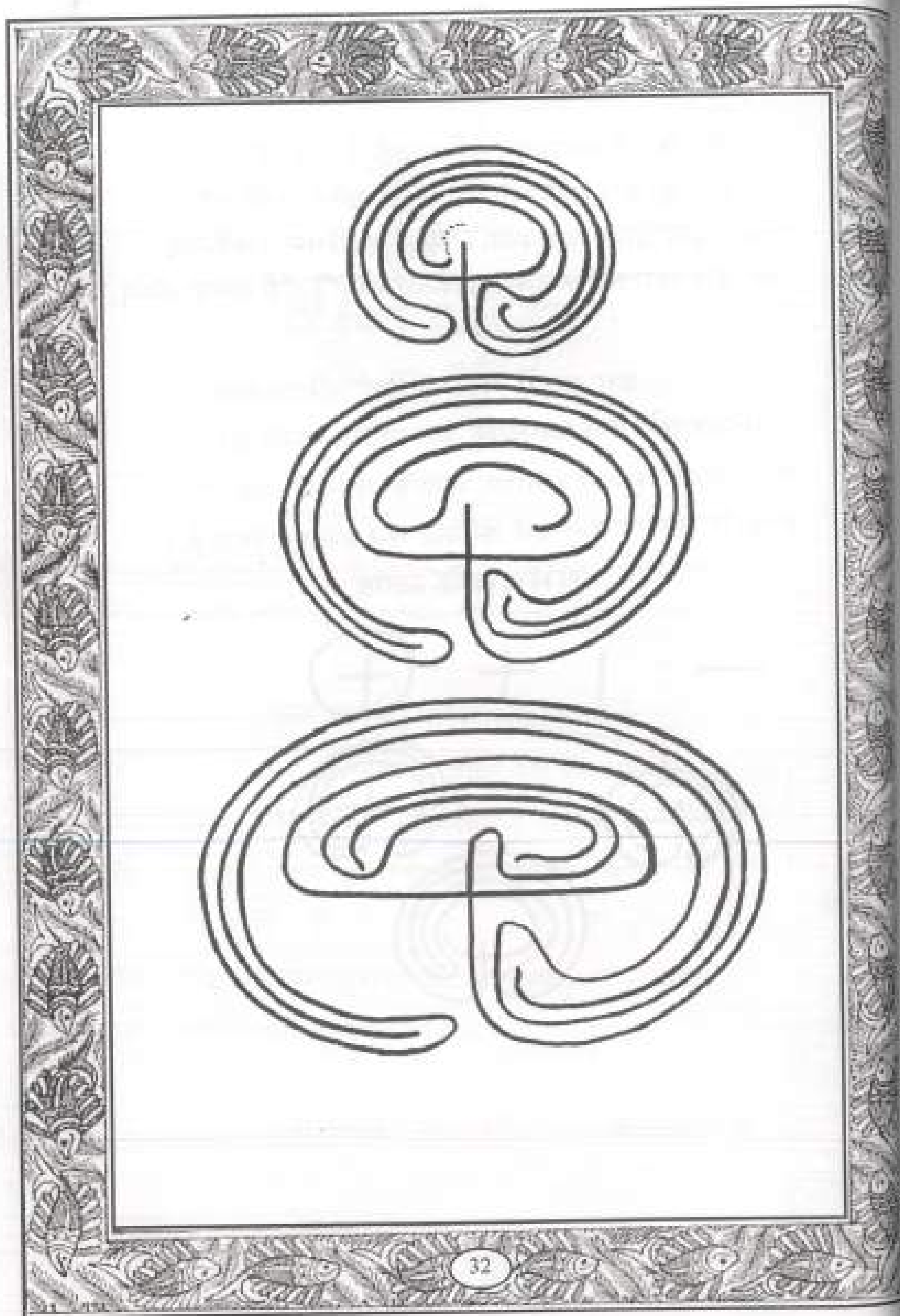
गर्भचक्र बनानेके पीछे कामना यह

होती थी कि जो कन्या 'उर्वरा' हुई है, वह अपने जीवन में 'एक पुरुष' (पति) के संग सुख-पूर्वक रहते हुए, गर्भ-सुख प्राप्त कर सके। **ऋतु- अरिपन** धरतीमाता-की अभ्यर्थनामें नव-रजस्वलाके हितार्थ बनाए जाते थे।

इस पाठमें भूलभुलैया परिपथवाले गर्भचक्रको दस खण्डोंमें विभाजित करते हुए अभ्यासको सुगम बनाया गया है। अन्तमें चक्रके बाहरसे दस कमल दल अंकित कर इसे पूर्ण किया है।

गर्भचक्रके खण्ड



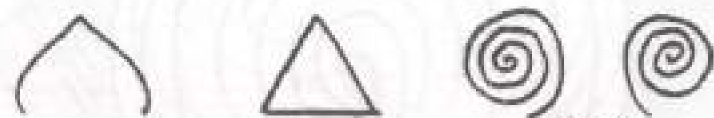


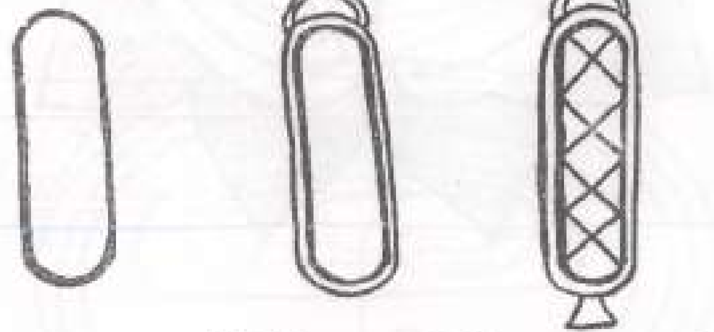
गर्भचक्र

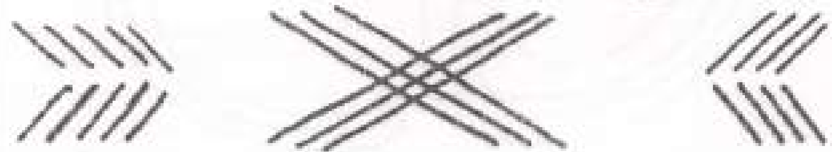


बाँस पाठ - 6













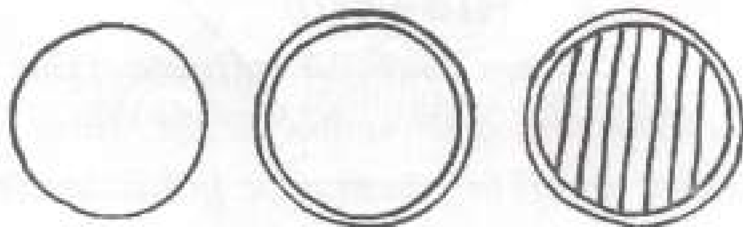
अरिपन

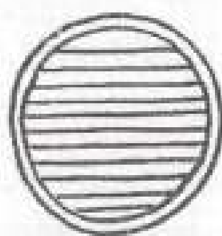
पाठ-7

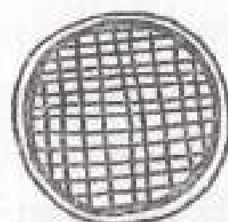
मिथिला चित्रशैलीमें **अरिपनका** विशेष महत्व है। मांगलिक कृत्यों, धार्मिक पर्वों और विशिष्ट सांस्कृतिक अवसरों पर भूमि चित्रण या भूमि-सज्जा करने की परम्परा प्रायः सम्पूर्ण भारतमें प्रचलित है। कहीं इस चित्रणको अल्पना, कहीं ऐपन, कहीं रंगोली, मांडण तो कहीं चौक पूरन कहा जाता है। दक्षिण भारतकी स्त्रियाँ प्रतिदिन अपने घरके द्वार पर, सूर्योदय और सूर्यास्तसे पूर्व, पत्थरके चूर्णसे, भूमि पर कोलमका निर्माण करती हैं। मिथिलामें गाभा संक्रान्ति, देवोत्थान एकादशी, दीपावली, भ्रातृद्वितिया, नवान्न आदि पर्वों एवं विवाहादि शुभ अवसरों पर स्त्रियों द्वारा श्रद्धापूर्वक, चावलके रंगसे, ज्यामितिक आकारके परम्परागत चित्र — अरिपन बनाए जाते हैं।

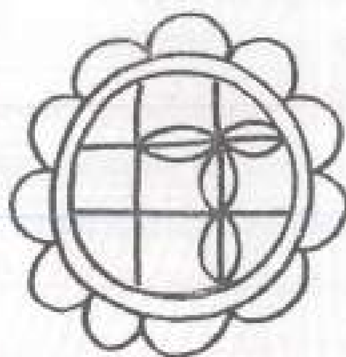
अरिपनका अर्थ है अर्पण करना – कलाके माध्यमसे अपने इष्टदेवको भावोंका अर्पण करना।

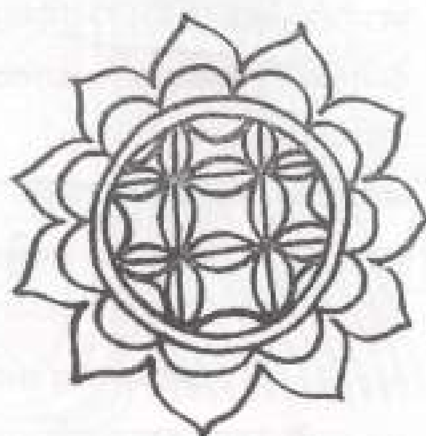
पुरैन



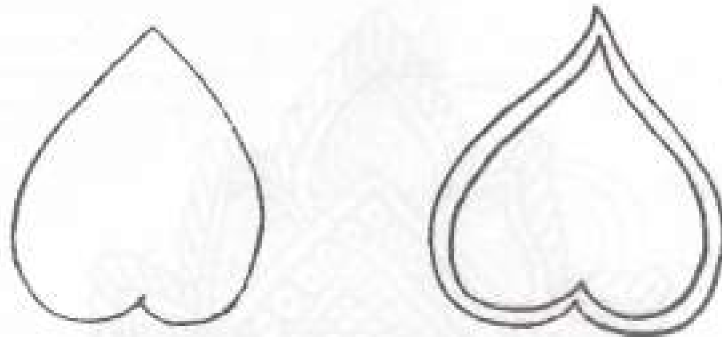


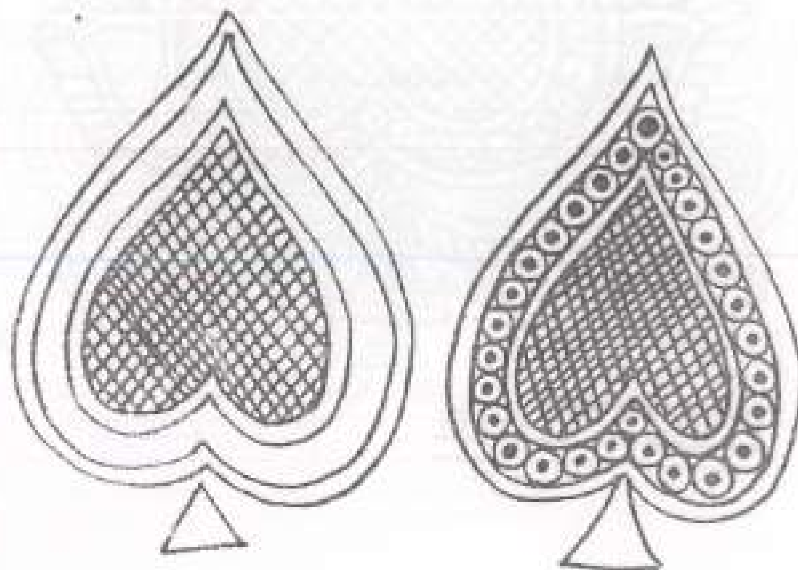






पनमा



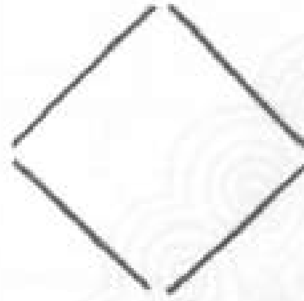
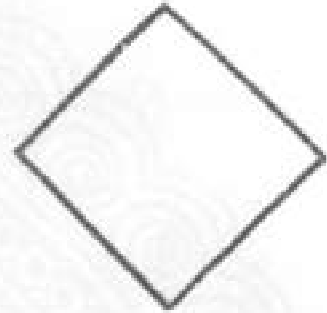
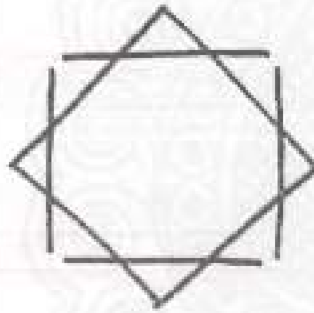
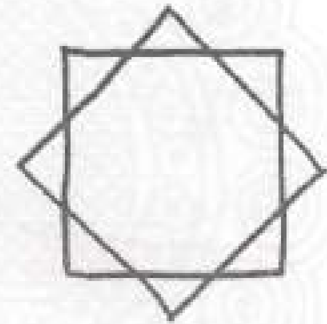
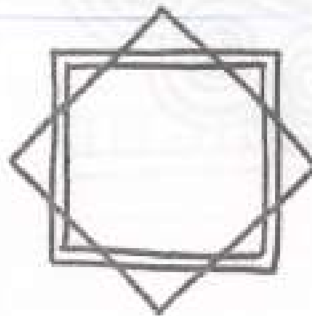
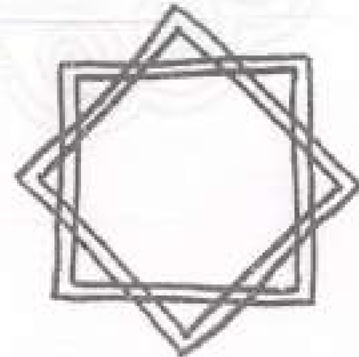


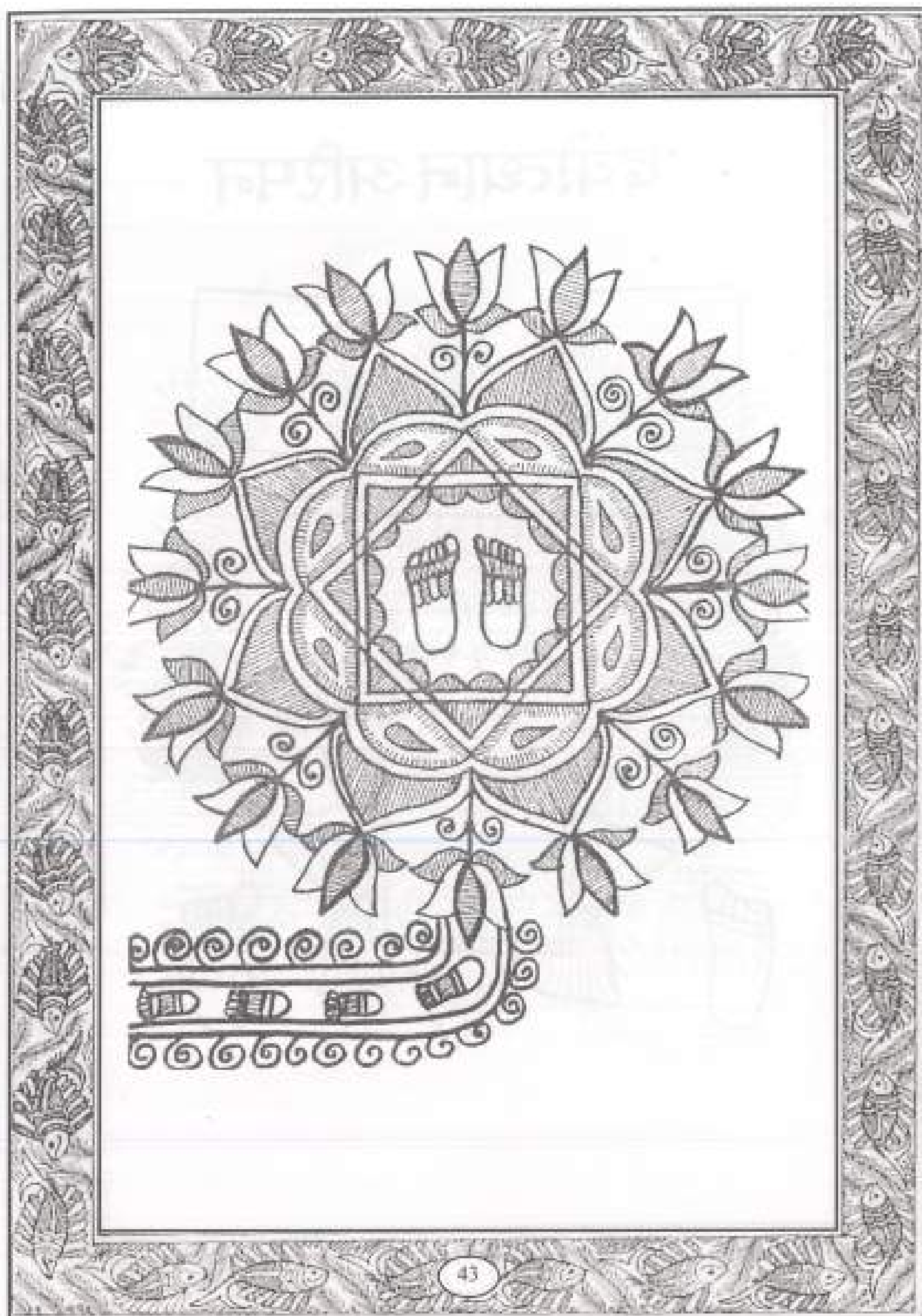




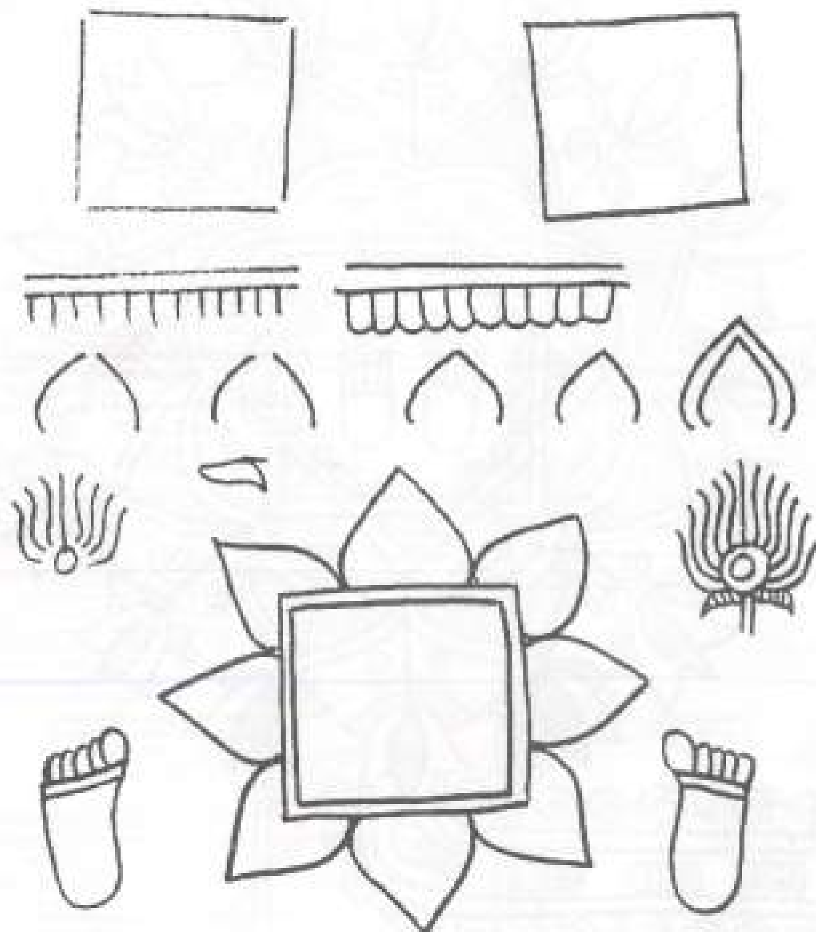


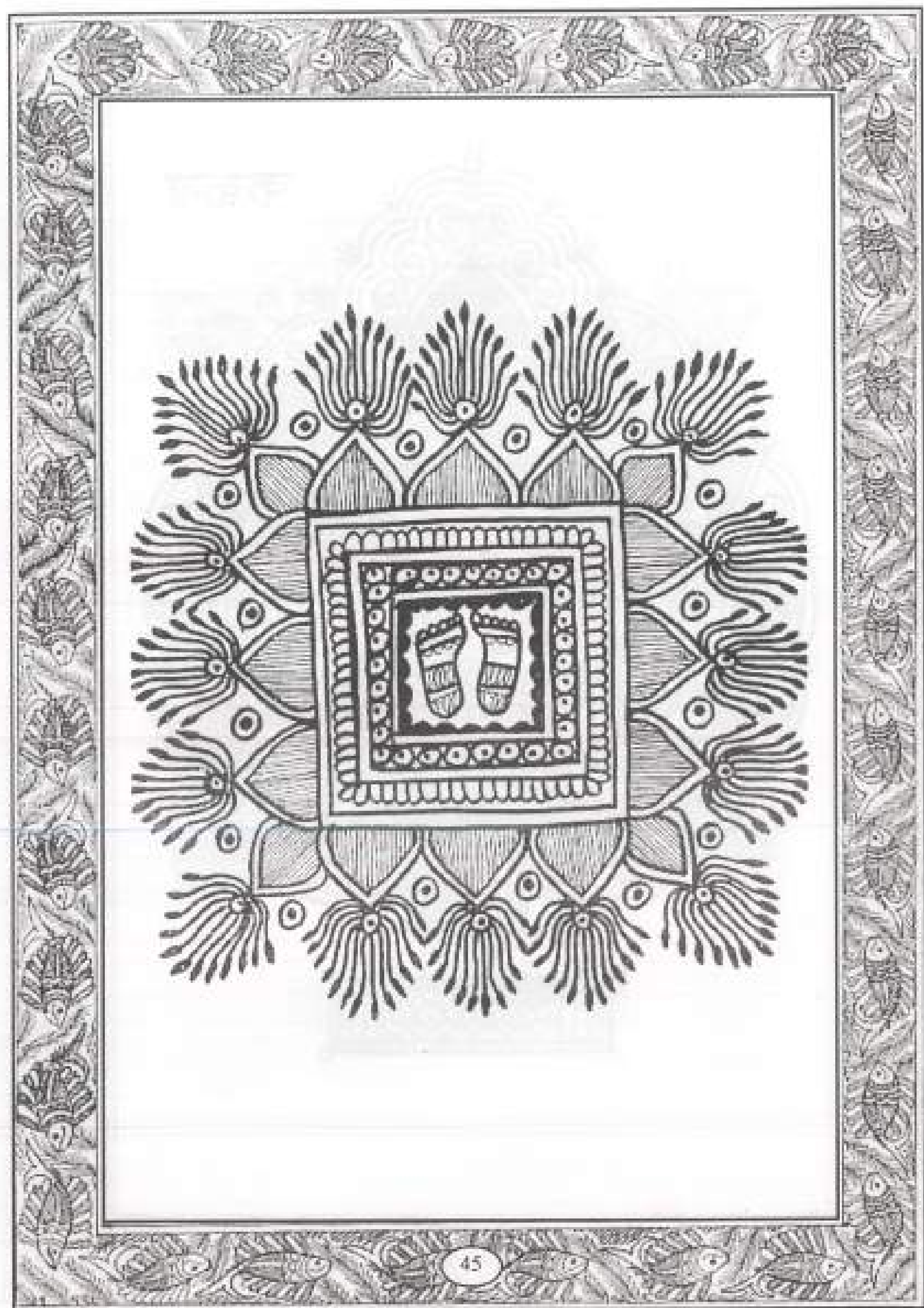
देवोत्थान अरिपन



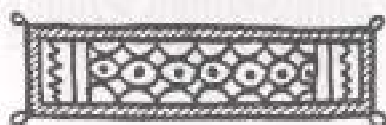
देवोत्थान अरिपन





ककबा

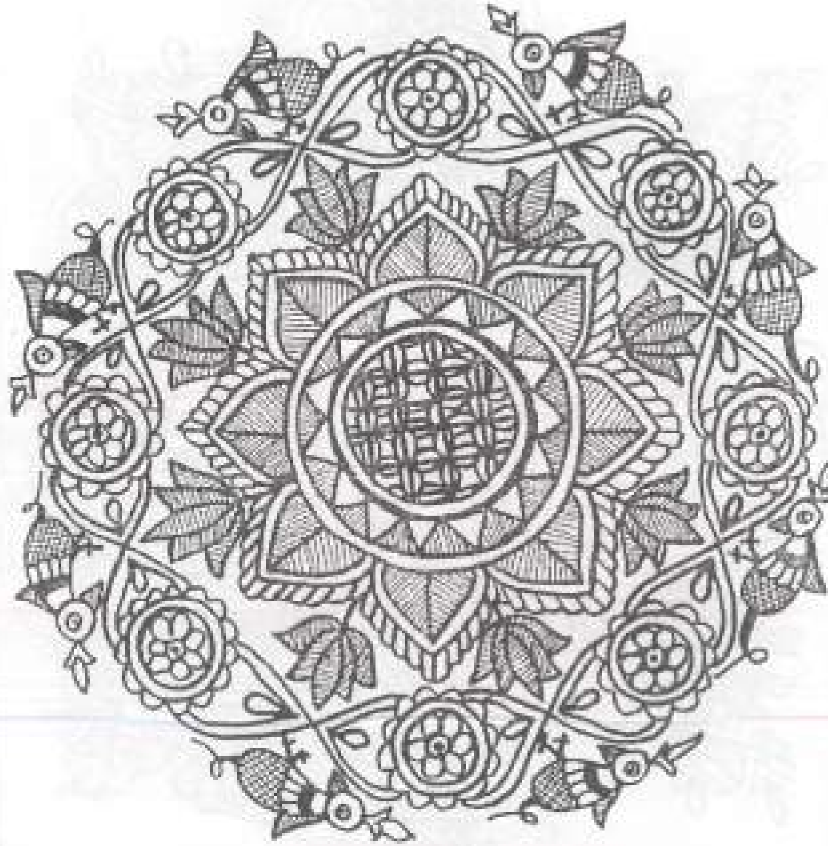




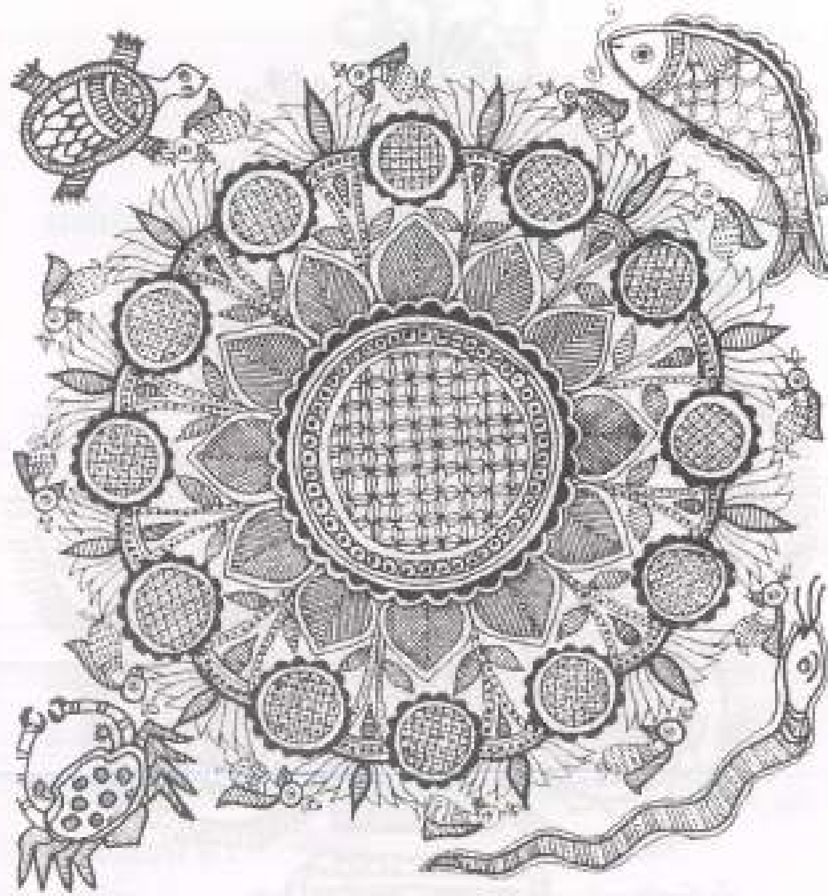
चौशंख



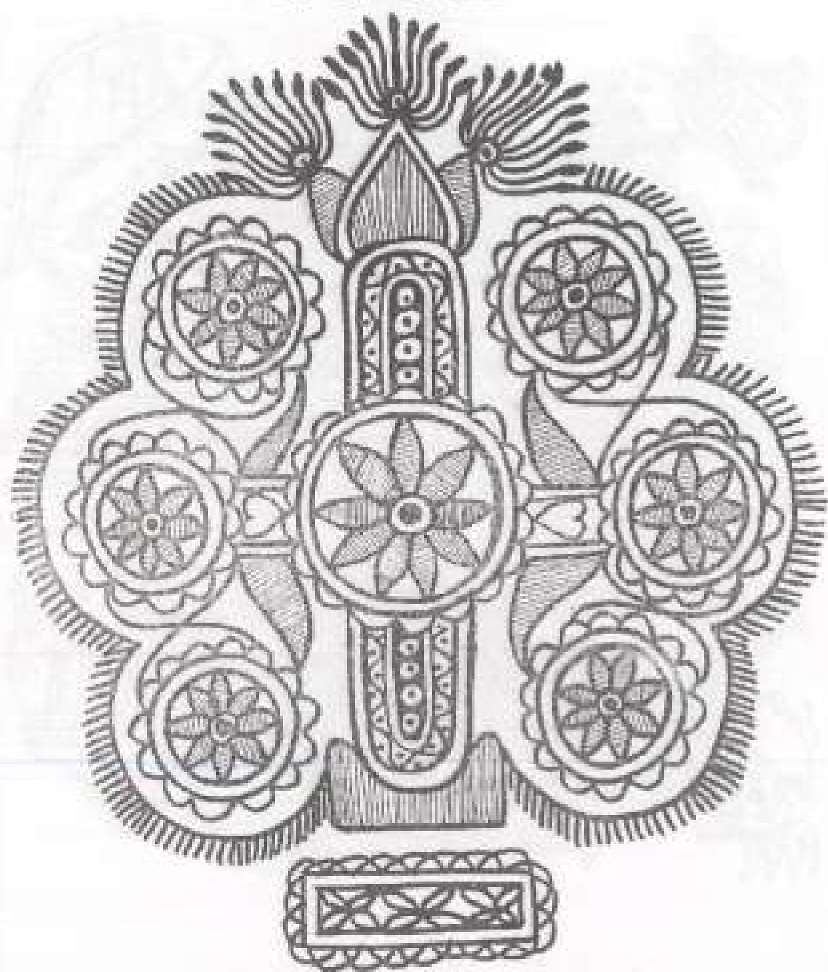
कमलदह



कमलदह



कोवर



कोबर

कोबर मिथिला चित्रशैलीका सर्वाधिक विख्यात और मनभावन चित्र है। यह एक प्रमुख वैवाहिक चित्र है जिसका चित्रण भूमि, दीवार और कागज पर करनेकी परम्परा है।

मिथिलाके कर्णाटकवंशी कायस्थोंके परिवारमें जब किसी कान्याके विवाहका आयोजन होता है तो विवाहके कई दिन पूर्वसे ही एक ऐसे घरका चित्रालेखन प्रारम्भ हो जाता है, जिसमें विवाहके तुरत बादसे वर-वधुका निवास होता है। इस कक्ष-विशेषको " कोबर " कहा जाता है। इस घरमें बननेवाले एक विशिष्ट चित्रको भी **'कोबर'** कहा जाता है।

कोबर घर अनेक प्रकारके चित्रोंसे सज्जित होता है। इस घरके भीतरी पूरबके दीवार पर

"कोबर" का विस्तृत चित्र अंकित किया जाता है, जिसके समक्ष भूमि पर बैठ कर वर-वधु कई प्रकारके विधिगत कार्य सम्पादित करते हैं। भीतरके अन्य दीवारों पर बाँस, बर्रे, कमलदह, दशावतार, दस महाविद्या, रास, स्वयंवर और अनेक प्रकारके श्रृंगारिक चित्र बनाए जाते हैं। घरके चारों कोणोमें, ऊपरी भागमें, "**नैनायोगिनी**" के चित्र बनाए जाते हैं। नैनायोगिनी वस्तुतः "एक सौ आठ योगिनियों" में एक तांत्रिक महाशक्ति हैं, जो वर-वधुके निर्विघ्न आनन्द-विहारके लिए निरन्तर पहरा देती रहती हैं।

कोबर चित्रमें मुख्यतः पुरैनके सात बड़े वृत्ताकार पत्ते — एक केन्द्रमें और दाँये-बाँये तीन-तीन — और उनके साथ छोटे-छोटे सात पत्ते मिलाकर कुल चौदह पत्ते; बीचके पुरैनका भेदन करता हुआ पुष्पित बाँस; सम्पूर्ण परिधिको घेरते हुए सुग्गे; मत्स्य; साँप; कच्छप; बिच्छू; काँकोर; शंख; भौंरा; नव- नवग्रह; सूर्य-चन्द्रमा; पंचवृक्ष (बेल, केला, सुपाड़ी, आम, महुआ) और लतादि (पान, लवंग, इलायची) आदि होते हैं।

विवाह-कार्यके सम्पादनके लिए आँगनके बीचोबीच एक चौकोर मण्डप (मड़वा) का निर्माण किया जाता है जिसकी भूमि पर, चावलके पिठारसे, विस्तृत कोबर अरिपनका आलेखन किया जाता है। कन्या-पक्ष द्वारा, भित्ति और भूमि पर कोबरके चित्रणके अतिरिक्त विवाहमें इसका चित्रण कागज पर भी किया जाता है। वर-पक्षके द्वारा, बड़े आकारके पाँच सादे कागज पर —— दो कागज पर लाल रंगसे कोबर, एक कागज पर दशावतार, एक पर कमलदह और एक कागज पर हरे रंगसे बाँस बनवाकर लाया जाता है, जिनमें सिन्दूरके पाकेट रखे होते हैं। इनका उपयोग विवाहसे लेकर चतुर्थी तक विभिन्न विधिके लिए किया जाता है। विवाहके बाद, द्विरागमनके लिए (वधुकी पहली विदाई) वर अपने साथ, सादे कागज पर पीले रंगसे बना कोबर चित्र और उसमें सिन्दूरका पाकेट रखकर लाता है। सन् १९३५-'४० ई० तक, द्विरागमनके लिए, बारह हाथकी साड़ी पर पीले रंगसे कोबरका पल्लू बनाकर लानेका भी प्रचलन था। कोबर चित्रके आलेखनका प्रचलन मैथिल ब्राह्मणोंके विवाहमें भी विधिगत है।

उत्पादन और रोजगार

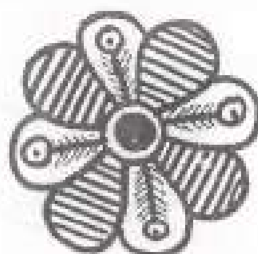
पाठ-8

मिथिला चित्रशैली में कई तरह के उत्पादन आधुनिक बाजारों की माँग में सम्मिलित हो गये हैं। उदाहरण के लिए, इस शैली में बने नयनाभिराम चित्र तो जग-प्रसिद्ध हैं ही, भारती विकास मंच, बरहेता के प्रयास से, सन् 1982 के बाद इस शैली में जो वस्त्रों पर चित्रांकन का प्रचलन प्रारम्भ हुआ, उसका बाजार अपेक्षाकृत बड़ा है। वस्त्रांकन के काम में आज मिथिला की हजारों स्त्रियाँ लगी हुई हैं। यदि कलाकार स्वयं यह उत्पादन और बिक्री कर सके तो इस काम में आमदनी भी अच्छी है। दुभाग्यवश, किसी दूसरे व्यवसायी के लिए काम करने वाली कलाकारों को उचित पारिश्रमिक नहीं प्राप्त हो रहा है।

वस्त्रांकन का सिलसिला छोटी वस्तु के निर्माण से शुरू करना चाहिए। उदाहरण के लिए, इस पाठ के अन्तर्गत टेबुल मैट, कुशन कवर, बोलस्टर और दुपट्टा के नमूने दिए जा रहे हैं। दुपट्टे, साड़ी और कुर्तों की बहुत अच्छी माँग रहती है। इन वस्त्रों की तैयारी में विभिन्न प्रकार के मोहक कोर (बोर्डर) की आवश्यकता होती है। इस पुस्तक में बहुत कुछ देना सम्भव नहीं हो सका। इच्छुक छात्र/कलाकार इस लेखकद्वय द्वारा रचित **''मिथिला चित्र कोर''** भाग-3 का अध्ययन कर सकते हैं। हम आशा करते हैं कि छात्राएँ आकृति-निर्माण का अभ्यास यदि रुचिपूर्वक करें तो चित्र-निर्माण और उसके द्वारा रोजगार में उन्हें अच्छी प्रगति हो सकती है।

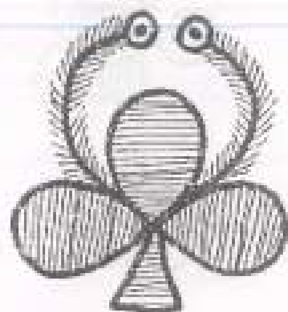
बूटी



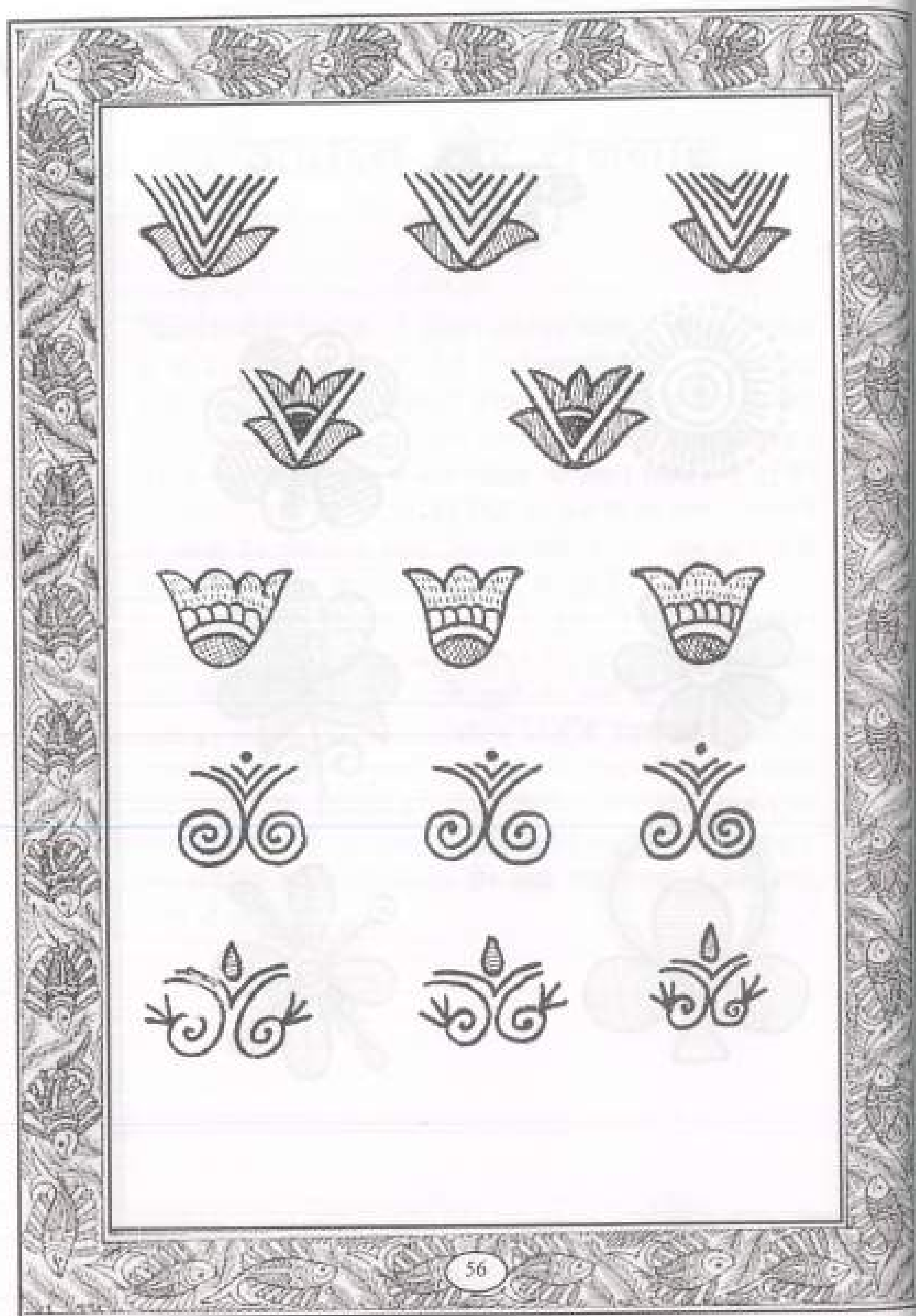


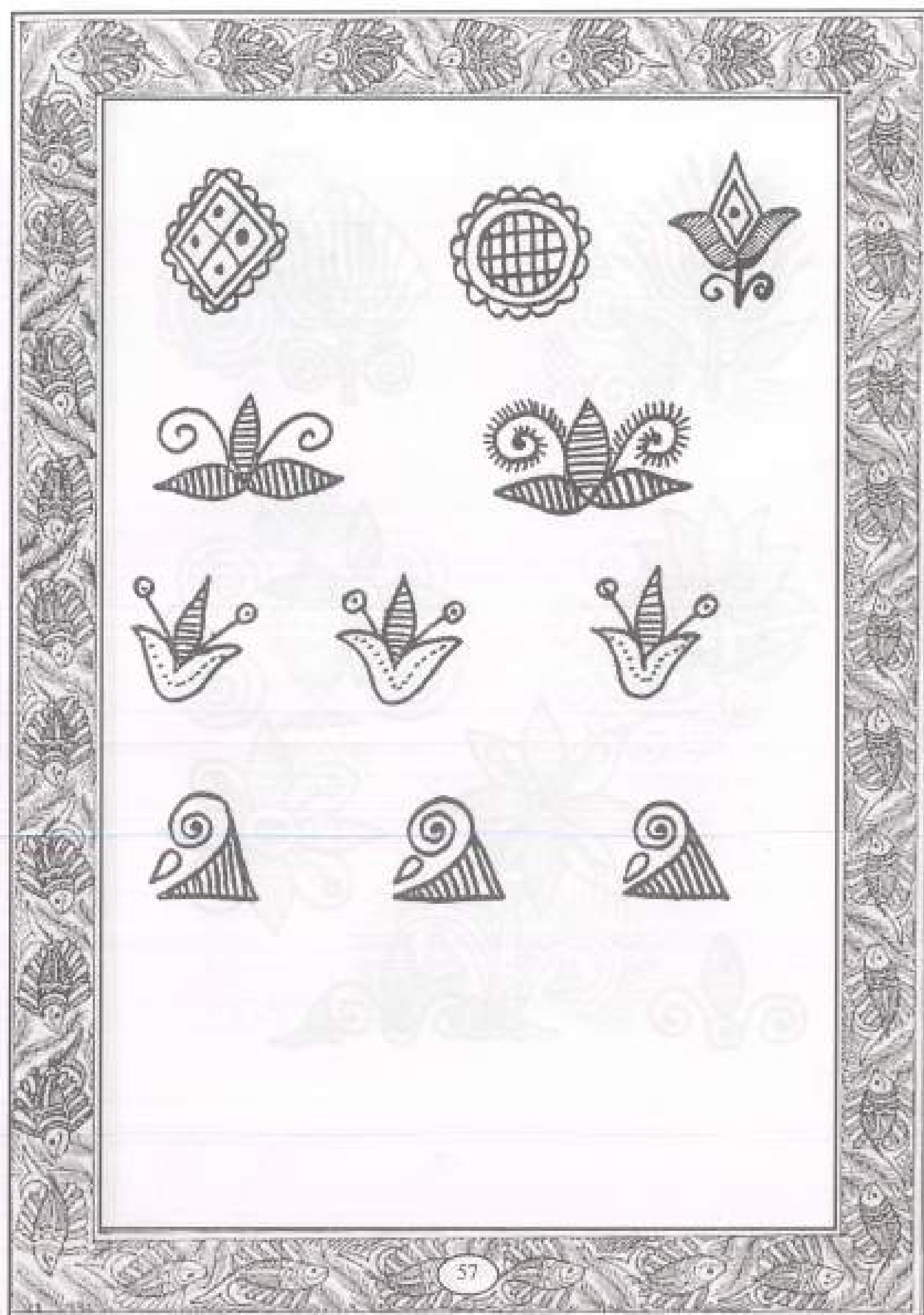










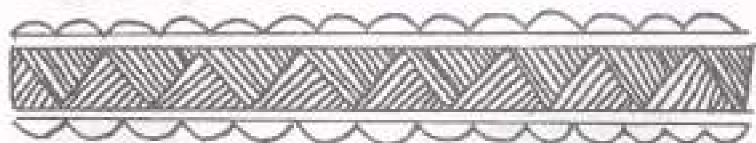


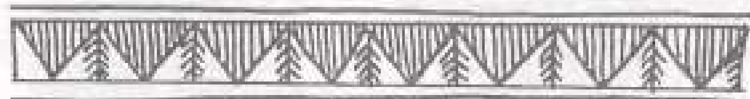


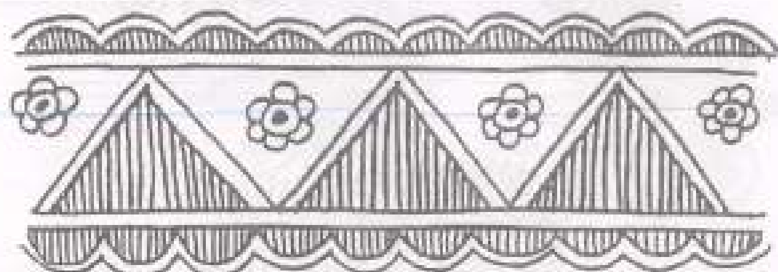


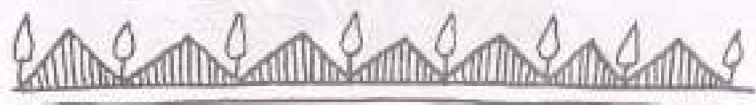
कोर (बोर्डर)

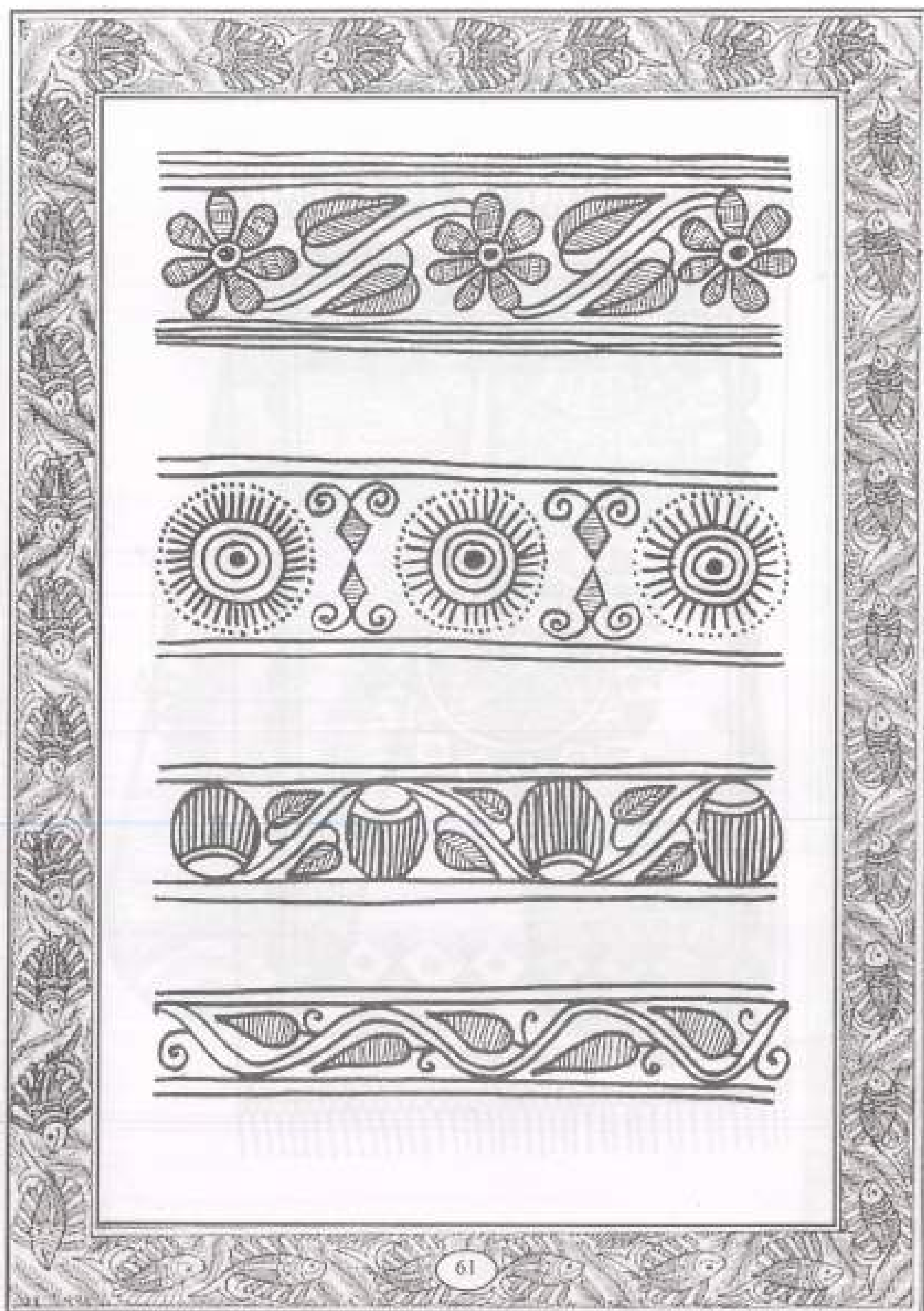




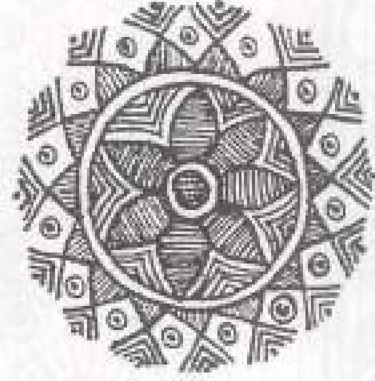




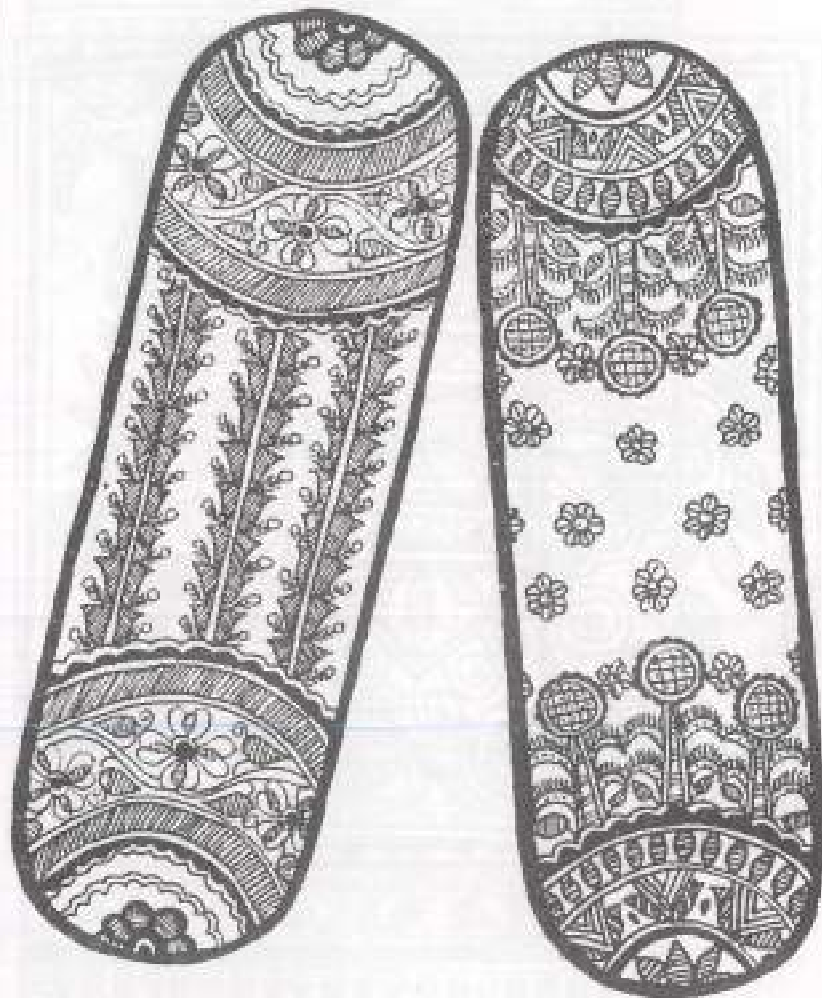




टेबल मैट



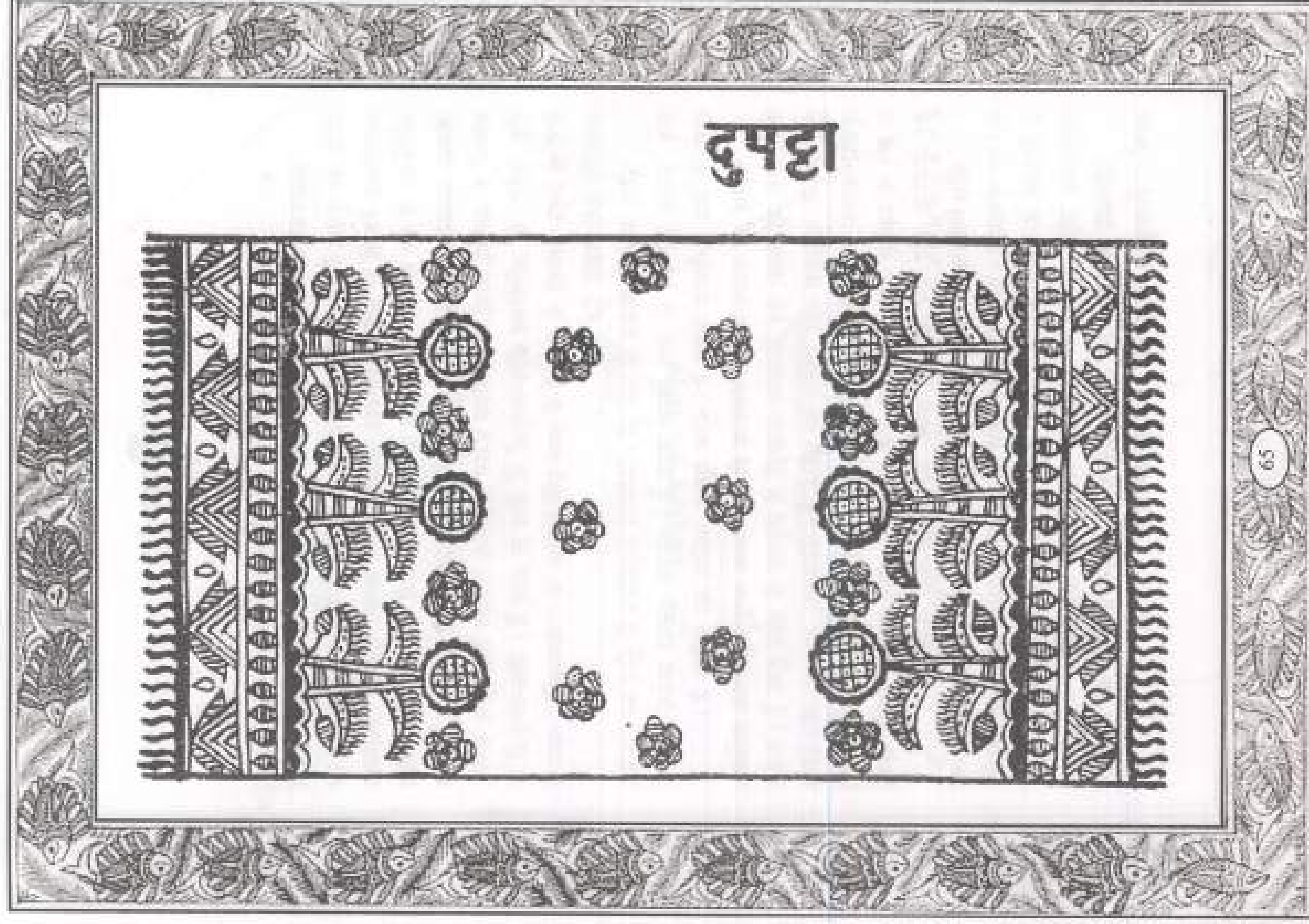
मसनद (बोल्स्टर)



कुशन कवर



दुपट्टा



प्रतीक

पाठ - 9

प्रतीकका अर्थ होता है चिन्ह; किसी शब्द, संख्या, नाम, गुण या सिद्धान्त आदि का सूचक चिन्ह। मिथिला चित्रशैली में प्रयुक्त होने वाले प्रतीक कुछ तो ज्यामितिक चिन्हों से बने हैं (जिनका अध्ययन आप अगली पुस्तक **''मिथिला अरिपन''** में कर सकेंगे), कुछ प्रतीक प्राकृतिक सत्ता जैसे सूर्य, चन्द्र और योनि (इनका अध्ययन भी आप उक्त पुस्तक में ही कर सकेंगे) से बने होते हैं। इन प्रतीकों के अलावा चित्रों में सर्वाधिक प्रयोग प्राकृतिक अवयव जैसे, पुरैन, कमल, बाँस आदि के अतिरिक्त जीव-जन्तुओं के बीच से आए हैं। जीव-जन्तुओं के बीच से आए प्रतीकों के सम्बंध में आप इसी पुस्तक के ''जीवाकृति'' पाठ में अध्ययन कर सकते हैं।

पुरैन कहते हैं कमल के पत्ते को। मिथिला लोकचित्र में पुरैन का उपयोग प्रायः प्रत्येक अरिपन के साथ किया जाता है। वस्तुतः इसका प्रयोग पूजा के थाल के रूप में किया जाता है। पुरैन मूलतः स्वस्ति का प्रतीक है।

कमल का प्रयोग केवल चित्रकला ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य, वास्तुकला, मूर्तिकला एवं अन्यान्य कलाओं में प्रचुरता के साथ हुआ है। कमल सुख-शान्ति, सुन्दरता और समृद्धि का प्रतीक है। कोमलता, सुन्दरता और दिव्य सुगंधि कमल के प्राकृतिक गुण हैं। कमल को देवी और देवताओं के आसन के रूप में दर्शाया जाता है। अनेक देवी-देवता इसे अपने हाथों में धारण करते हैं। सुन्दरता और धन की देवी लक्ष्मी को कमला कहा गया है।

बाँस मिथिला की बहुत उपयोगी वनस्पति है जो अपनी सघनता और उर्वरता के लिए प्रसिद्ध है। बाँस को भरे-पूरे वंश या वंश-वृद्धि अथवा सम्पूर्ण मानवजाति के विकास के प्रतीक रूप में मान्यता है। वैवाहिक चित्रों में बाँस के अंकन का पारम्परिक उद्देश यह है कि नवदम्पति वंश-वृद्धि में सफल हों।

जीवादि से सम्बंधित अनेक प्रतीक हैं । इन प्रतीकों का अध्ययन आप ''जीवाकृति अनुभाग'' में कर सकेंगे।

आकृति-खण्ड

अनुभाग 1 - आकृति

अनुभाग 2 - देवाकृति

अनुभाग 3 - शक्ति

अनुभाग 4 - मानवाकृति

अनुभाग 5 - दानवाकृति

अनुभाग 6 - जीवाकृति

****

खण्ड – 2

अनुभाग –1

आकृति – रचना



आकृति

उन्नत भाल, ऊँची-पतली नासिका, कमान-सी भौंहके नीचे सुदीर्घ सजल नयन और स्मितिकी एक रेखासे खिंचे होंठ चुप रहकर भी अपना नाम-पता बता ही देते हैं। …… फिर भी यदि परिचयमें कोई कोताही रह जाय तो पतली दोहरी रेखाकी कछनीमें लिपटी देह-यष्टि मिथिला चित्रको अन्य सभी लोकचित्रोंसे पृथक एक पहचान देती है।

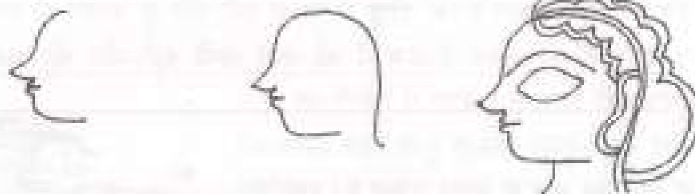


मिथिला चित्रके शिल्पीकी कलम भालके शीर्ष बिन्दुसे नीचेकी ओर लगातार बढ़ते हुए, एक ही रेखासे मुखमण्डलकी रचना करती है।

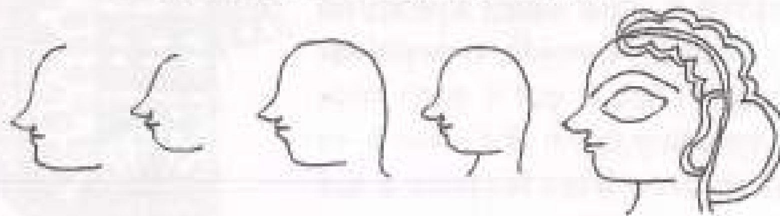


कलमकी दूसरी परिक्रमा शुरू होती है माथेकी गोलाईको आकार देनेके लिए –

……और इसके साथ ही माथेकी सज्जा, सकाल कर्ण, बिना पुतलीके नयन-कोश और भौंह ……

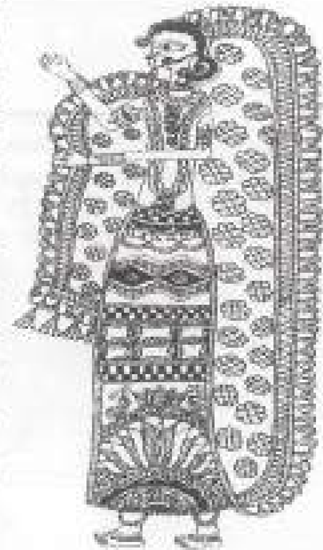


अब रचना-प्रकारके निर्णयके लिए निमिष भर का ठहराव …… सोच लीजिए, कैसा चित्र बनाना है — रंगनी-भरनीवाला चित्र या इकहरी रेखासे बने चित्र? पद्धति दोनोंकी है। अगर रंग-चित्र बनाना है तो गलेसे इसकी प्रक्रिया शुरू हो जाती है। यहींसे पतली-दोहरी रेखाकी रचना और उसमें महीन कछनी (असलमें ये कछनी चित्रके रोम हैं, प्राणमय ऊर्जासे रोमांचित!



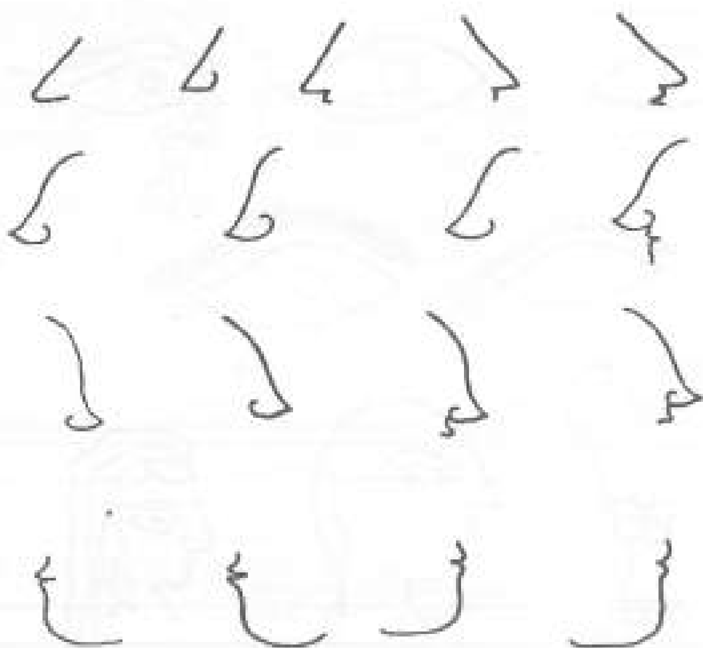
दन्तकथा है कि जब कोई स्त्री गर्भवती होती है तो उसकी कोख में पल रहे शिशु की गर्भ-आयु लिखने, और आगे जन्म के बाद चित्रगुप्त द्वारा भाग्य-लेख लिखने के लिए ''भाग्य-पट'' (कपाल) की तैयारी करने हेतु ''कपोतरूपधारी बिध-विधाता'' गर्भ के पाँचवें माह में गर्भिनी के घर आते हैं। माना जाता है कि बिध-बिधाता द्वारा गर्भ में भाग्य-पट तैयार कर देने के बाद गर्भिनी को (अर्थात पाँचवें माह के बाद) खुले आँगन में नहीं सोना चाहिए ताकि कोई दूसरी पक्षीरूपधारी दुष्टशक्ति गर्भिनी के ऊपर से उड़ कर उसके गर्भस्थ शिशु का भाग्य-पट ही कहीं खण्डित न कर दे। चुँकि बिध-बिधाता द्वारा सबसे पहले गर्भस्थ शिशु का भाग्य-पट तैयार किया जाता है, इसलिए मिथिला की चित्रकार स्त्रियाँ सबसे पहले चित्र का भाल बनाती हैं।

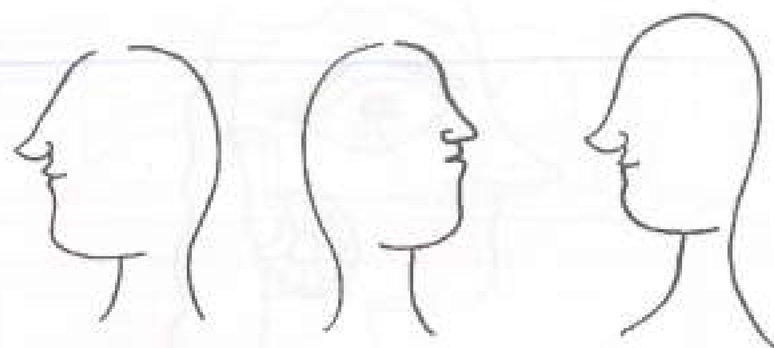
मिथिल समाज में 'खड़ी लम्बी नाक' और 'आम के फाँक जैसी बड़ी आँख' को सुन्दरता का प्रतीक माना जाता है। वैसे भी 'नाक' प्रतिष्ठा का सर्वमान्य प्रतीक है। मिथिला के चित्रकार और मूर्तिकार मुख-मण्डल की रचना के साथ ही आँख को आकार देते हैं, लेकिन आँख के ठीक बीच में पुतली सबसे अन्त में देते हैं। माना जाता है कि आँख में पुतली नहीं होने के कारण ही निर्माणाधीन चित्र या मूर्ति को रचना के क्रम में की जाने वाली काट-छाँट की तकलीफ का अनुभव नहीं होता है। आँख में पुतली आ जाने के बाद टुकुर-टुकुर ताकता हुआ चित्र कलम की नोक देख कर भय से सिहर उठता है। इसीलिए चित्र की शेष रचना पूर्ण होने के बाद कलाकार 'पुतली' देकर उसे प्राणवन्त बना देता है; चित्र में प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है।



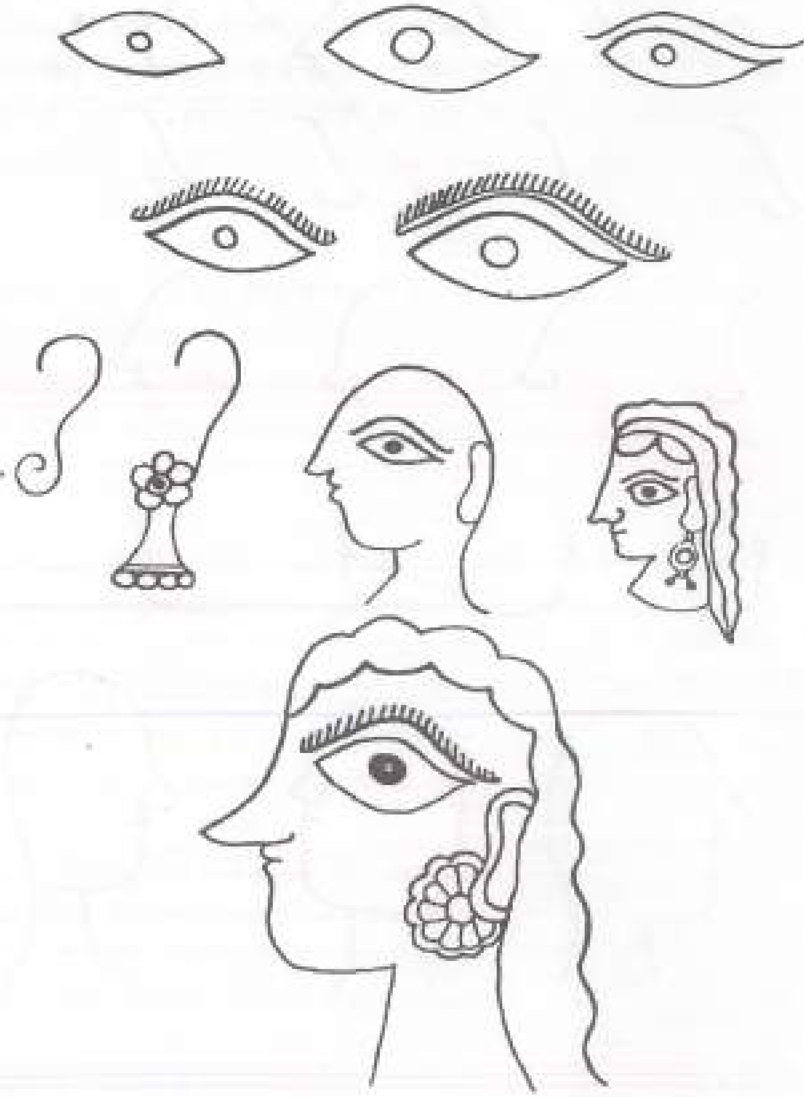
मिथिला चित्र में मुख्यतया चार प्रकार की आकृतियों के अलावा बनस्पति के आकार होते हैं --- **देवाकृति, मानवाकृति, दानवाकृति और जीवाकृति**। आगे के पृष्ठों में आकृति-निर्माण के कुछ अभ्यास दिये जा रहे हैं। आशा है, इन पाठों के अभ्यास से छात्र चित्र-निर्माण के कार्य में सफलता पा सकेंगे।

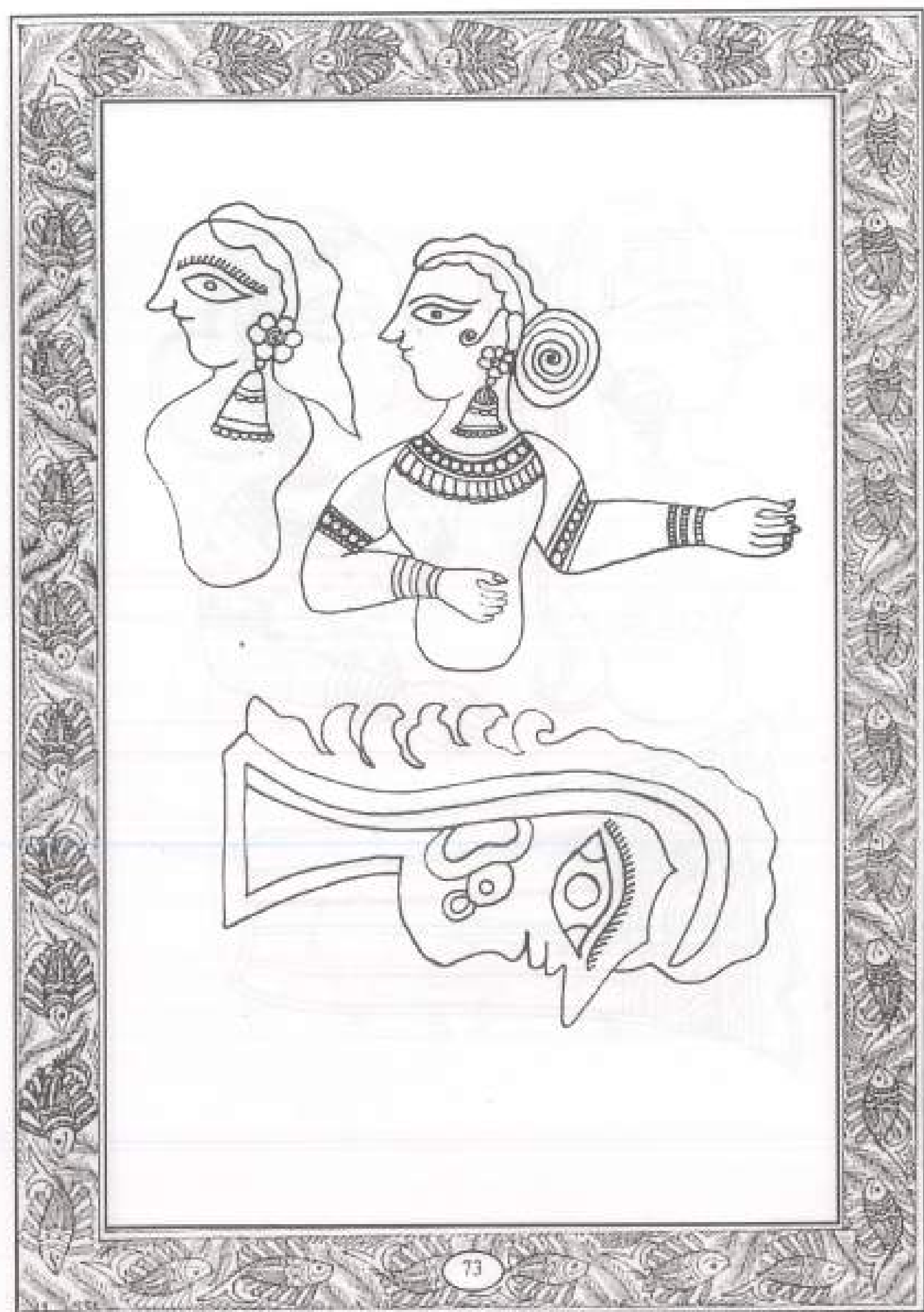
मुखाकृति

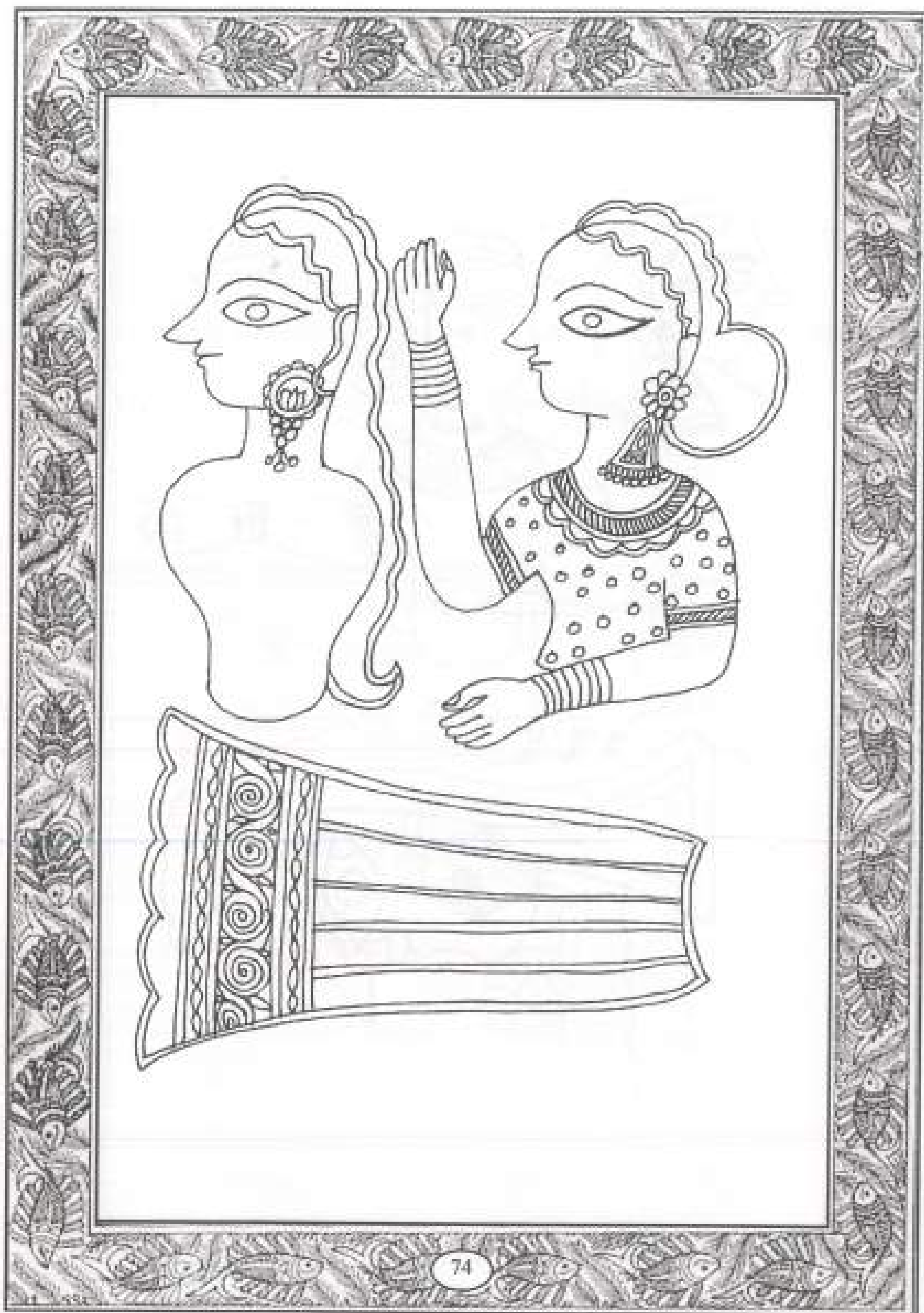




मुखमंडल



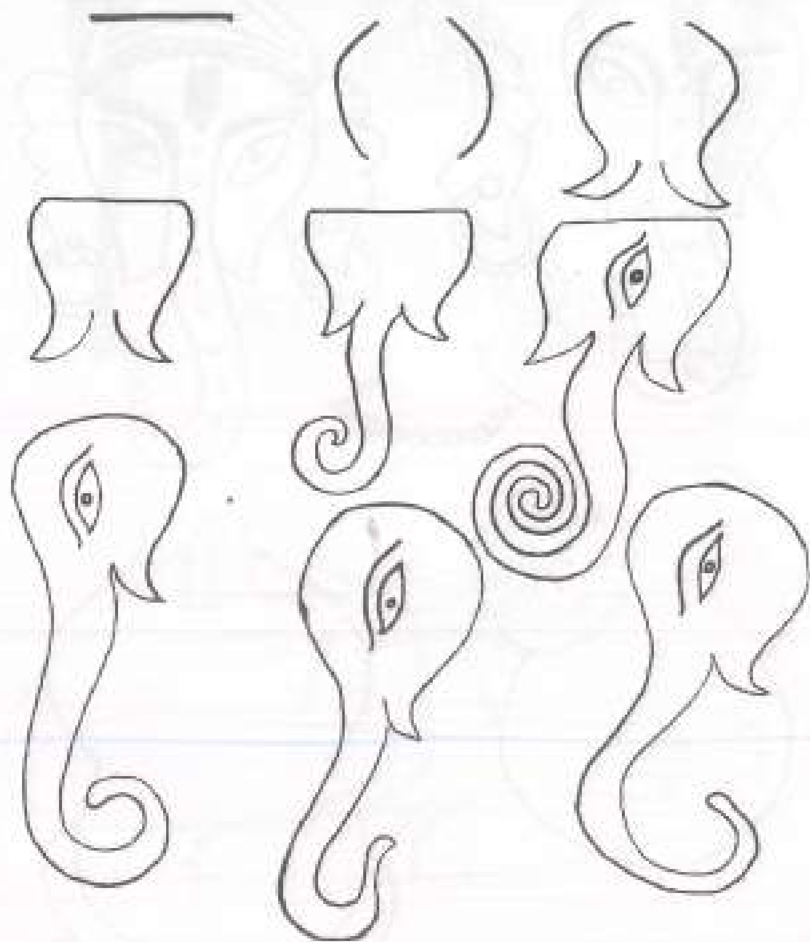


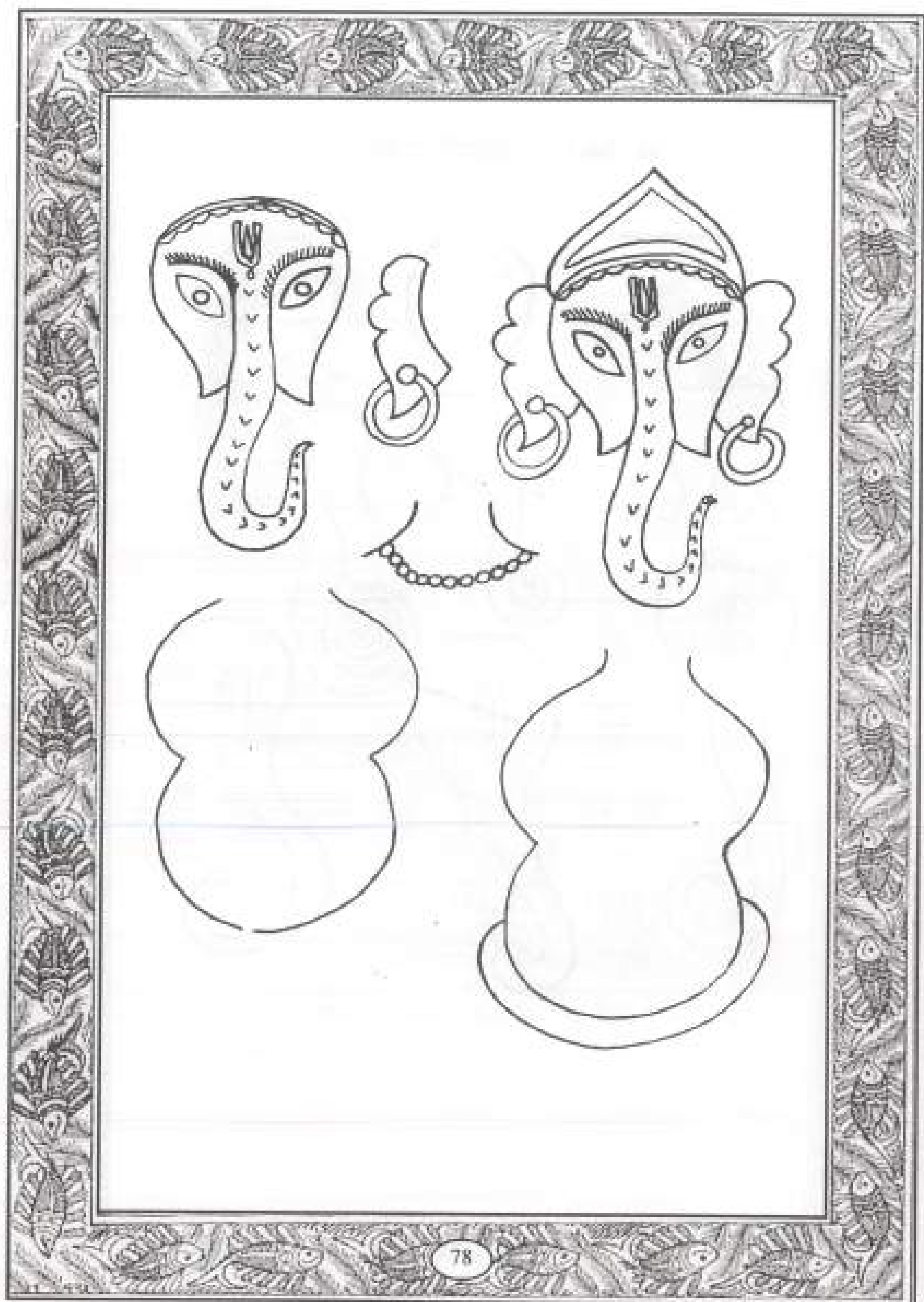


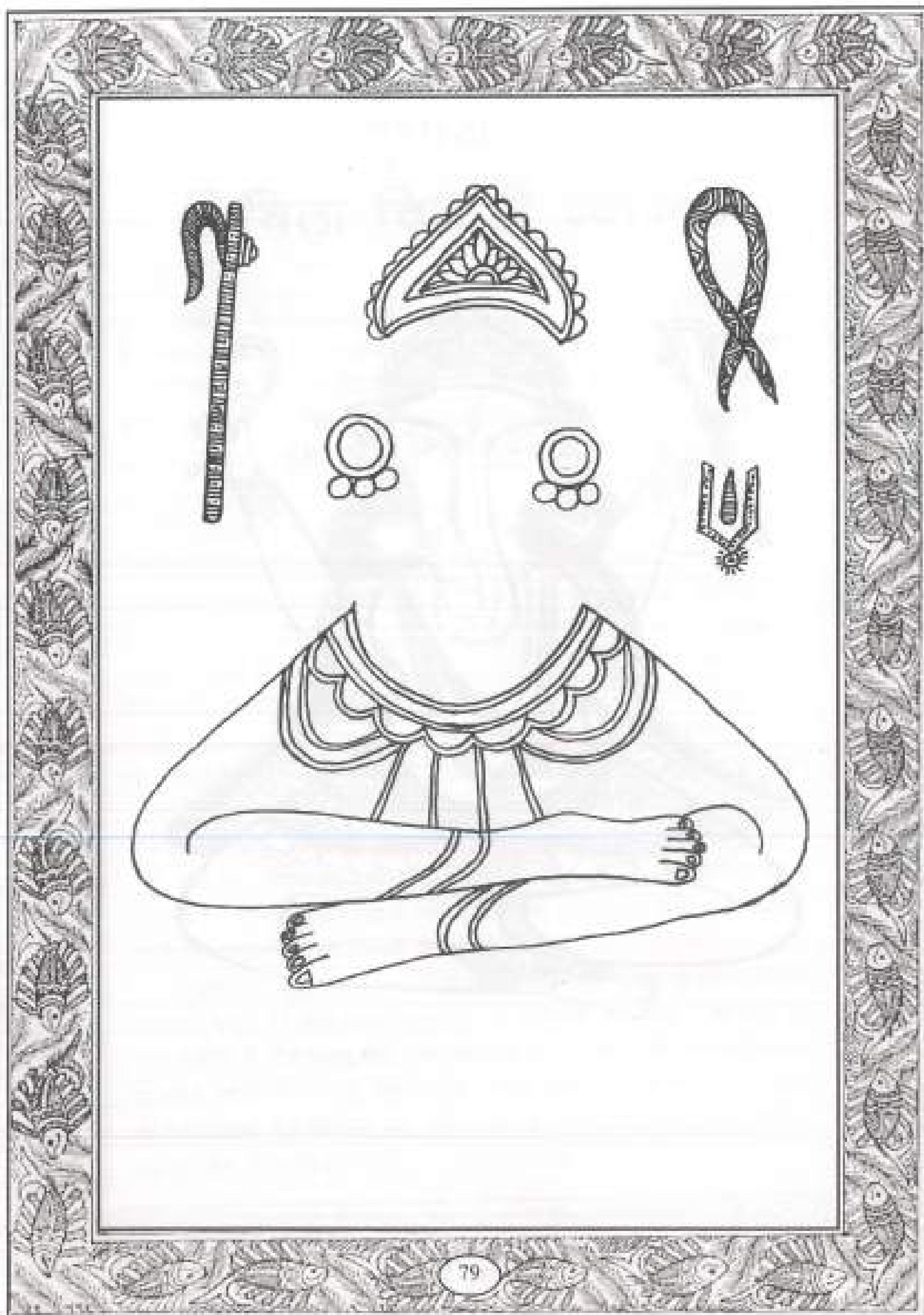




रूपांकन : श्रीगणेशजी









अनुभाग - 2
मिथिला चित्र में देवाकृति

मिथिला चित्र-कला प्रागैतिहासिक सिन्धुघाटी सभ्यता के जीवित अवशेष हैं जिसकी रेखाओं में सामाजिक-सांस्कृतिक लोच और उसके रंगों में दिव्यता का परिपाक है, जो उसे दैवी शक्ति की परिकल्पना में कौटुम्बिक लयात्मकता प्रदान करता है। मिथिला चित्र के देवी-देवता किसी अनजाने - अनदेखे स्वर्ग का अधिपति या मुक्ति का प्रदाता नहीं है; वह तो अपने प्रिय कुटुम्ब हैं, जो यदा-कदा शुभ अवसरों पर परिवार में सप्रेम पधारते हैं।

पौराणिक कथाओं और दन्त-साहित्यों में उल्लेख है कि वर्षा ऋतु में 'हरि-शयनी एकादशी' के दिन श्रीहरि विष्णु अपनी अर्धांगिनी लक्ष्मीजी के साथ शयन-कक्ष में चले जाते हैं और शरद ऋतु में 'देवोत्थान एकादशी' के दिन जगते हैं। इस दिन मिथिला की गृहस्थ स्त्रियाँ गोबर-माटी से अपने आँगन को लीपती-पोतती हैं और उस पवित्र भूमि पर चावल के श्वेत रंग से विस्तृत अरिपन (अष्टदल, ककबा) बनाती हैं। ''अष्टदल'' आठ पत्तों वाला कमलरूपी भवन है जो अष्टसिद्धि और नवनिधि से सम्पन्न है। इस अष्टदल कमल के मध्य में 'सुखासन' की रचना की जाती है, जिस पर लक्ष्मी-नारायण सुख-पूर्वक शयन करते हैं। परम्परानुसार, देवोत्थान एकादशी से पूर्व 'गाभा संक्रान्ति' का पर्व होता है। यह गो और भूमि की उपासना का पर्व है। इस तिथि को भी आँगन में इसी तरह के अरिपन (ककबा) बनाए जाते हैं। माना गया है कि इस दिन लक्ष्मी और विष्णु वैकुण्ठ (प्रकट रूप में कुल-पूजा स्थल) से चल कर देवोत्थान एकादशी के दिन मिथिला के घर-आँगन में पहुँचते हैं।

विष्णु को समर्पित इन भूमिचित्रों के पीछे एक सम्बंध-कथा है जिसके अनुसार समुद्र की बेटी लक्ष्मी कर्णाटक के मूलवासी मैथिल-कर्ण कायस्थों की बेटी-भतीजी हैं और उनके पति विष्णु मिथिला के जामाता, पाहुन हैं; जैसे मिथिला में जन्मी सीता और उनके पति श्रीराम (लक्ष्मी और विष्णु के अवतार) मिथिला के बेटी-दामाद हैं। मिथिला की महिला चित्रकारों की यह समझदारी देवचित्रों को धार्मिक से अधिक सामाजिक छवि प्रदान करती है।

श्रीगणेशजी

हिन्दू धर्म-शास्त्रों के अनुसार शिव-पार्वती के पुत्र **'गणेश'** को बुद्धि के अधिदेवता और सदैव मंगलकारी कहा गया है। विघ्नों को दूर करने के लिए गणेश की पूजा प्रत्येक मांगलिक कार्यके प्रारम्भ में की जाती है। इनकी संज्ञा **'विनायक'** भी है, क्योंकि ये समस्त देवताओं में अग्रणी हैं। इन्हें रुद्र का पुत्र माना जाता है किन्तु पुराणों में इस सम्बंध में घोर मतभेद है। गणेश को आदिदेव कहा गया है और इसी आधार पर गोस्वामी तुलसीदास ने वर्णन किया है कि स्वयं शिव और उमा ने अपने विवाह से पूर्व गणेश की पूजा की। कोशों के अनुसार इनके विघ्नेश्वर, परशुपाणि, गजानन, एकदन्त, लम्बोदर आदि अनेक नाम हैं जिनसे इनका स्वरूप प्रकट होता है।

भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला में गणपति की दो, तीन, चार और पाँच सिर वाली मूर्ति भी पाई जाती है। इसी प्रकार उनके एक से तीन दाँत भी दिखाए गये हैं। सामान्यतः उनकी दो आँखें पाई जाती हैं किन्तु तन्त्रमार्ग सम्बंधी मूर्तियों में उनके एक तीसरा नेत्र भी पाया जाता है। गणेश का वाहन मूषक है पर वे कभी-कभी सिंह अथवा मयूर पर भी आसीन देखे गये हैं। उनकी मूर्तियाँ कभी खड़ी अथवा पद्मासन स्थिति में तो कभी नृत्य-मुद्रा में अंकित हैं।

लोक विश्वास में गणेश का जो रूप प्रचलित है उसमें इनका मस्तक हाथी का है। ये हाथ में फरसा और पाश लिये रहते हैं। इनका पेट तुन्दिल दिखाया जाता है और प्रायः नाग-यज्ञोपवित पहने रहते हैं। सिद्धि और बुद्धि इनकी दो स्त्रियाँ हैं। कहीं-कहीं पुष्टि को भी इनकी पत्नी कहा गया है। सिद्धि का स्थान गणेश के वाम भाग में और बुद्धि का स्थान दक्षिण भाग में माना गया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने गणेश को ''बुद्धि-राशि'' कह कर वन्दना की है --

''जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिवर वदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि शुभ गुन सदन।।

(श्रीरामचरितमानस)

गणेश को मूषकवाह और मूषकध्वज भी कहा गया है। मूषक जैसे लघुप्राणी को लम्बोदर महाकाय गणेश ने अपना वाहन क्यों बनाया इस सम्बंध में **'गणेश-पुराण'** में एक कथा है कि क्रौंच नामक एक गन्धर्व था। वह इन्द्र की सभा में अपना गायन प्रस्तुत कर रहा था। उसने गाते-गाते ही थूका। उसका थूक वहाँ बैठे वामदेव पर आ गिरा। तब वामदेव ने क्रुद्ध हो कर उसे मूषक होने का शाप दिया और वह मूषक बन कर पराशर ऋषि के आश्रम में रहने और आश्रम की चीजें खाने लगा। वामदेव ने मूषक के उपद्रव से परेशान हो कर गणेश से प्रार्थना की। गणेश ने उस मूषक को पकड़ लिया। मूषक ने अनुनय-विनय कर गणेश को प्रसन्न कर लिया और उन्होंने उसे अपना वाहन बना कर अपने पास रख लिया।

हिन्दी मुहावरे में **''श्रीगणेश''** का अर्थ होता है प्रारम्भ करना।

महादेव

भारतीय धर्म के इतिहास में महादेव शिव की प्राचीनता अक्षुण्ण है। महादेव सबसे प्राचीन और सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक पूज्य देवता हैं। शिव पुराण में एक स्तुति है –

''जो आदि, मध्य और अन्त में नित्य मंगलमय हैं, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्मा के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले देवता (परमेश्वर) हैं, जिनके पाँच मुख हैं और जो खेल-खेल में, अनायास जगत की रचना, पालन और संहार तथा अनुग्रह एवं तिरोभावरूप पाँच प्रबल कर्म करते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ अजर-अमर ईश्वर अम्बिकापति भगवान शंकर का मैं मन ही मन चिन्तन करता हूँ।''

भारतीय साहित्य और कलाओं में शिव दो रूपों में प्रदर्शित किये गये हैं – एक तो मूर्त रूप में और दूसरा लिंगरूप में। शिव के दोनो रूपों की कल्पना अति प्राचीन है। आर्य सभ्यता के उदय और सिन्धुघाटी सभ्यता के विनाश से पूर्व भी शिव के दोनो रूप प्रचलित थे। सिन्धुघाटी सभ्यता के निवासी (लगभग

5,000 वर्ष पूर्व) जहाँ एक ओर ध्यानी शिव की उपासना करते थे, वहीं उनके समाज में लिंग और योनि की पूजा का भी प्रचलन था। आज भी शिव के दोनो रूप मान्य हैं।

मूर्तरूप में शिव अन्य सभी देवताओं से अपनी वेश-भूषा के कारण सर्वथा भिन्न हैं। उनके स्वरूप का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि शिव वस्तुतः योग और भोग की समन्वित सत्ता हैं। बाघम्बर धारण करने वाले शिव सदैव ध्यानस्थ रहते हैं। बाघम्बर और ध्यान दोनो ही शिव के योगीरूप की स्थापना करते हैं; दूसरी ओर जटा-जूट पर अर्धचन्द्र विद्यमान हैं, जहाँ पतित-उद्धारणी गंगा विश्राम करती हैं। शिव की जटाएँ उनकी सांसारिक जीवन-प्रक्रिया में संलग्नता का प्रतीक है, चन्द्रमा सुन्दरता और उत्पत्ति के प्रतीक हैं और गंगा (जल) जीवन का प्रतीक है। शिव का डमरू ध्वनि और आकाश का प्रतीक है। उनके गले और देह से लिपटे साँप सांसारिक इच्छा के द्योतक है। शिव का त्रिशूल अखण्ड साधना और ध्वंश का द्योतक है। इस प्रकार शिव वस्तुतः सृजन, पालन और संहार के सर्वोच्च देवता हैं।

अनुश्रुति है कि कवि विद्यापति की भक्ति से प्रभावित हो कर शिव उनके सेवक बन कर 'उगना' नाम से वर्षो उनकी सेवा में लगे रहे। इस सेवकाई में शर्त्त यही थी कि जिस दिन विद्यापति इस रहस्य को उजागर कर देंगे, उसी समय शिव अन्तर्धान हो कर अपने धाम कैलास लौट जायेंगे। अन्ततः ऐसा ही हुआ। एक दिन विद्यापति शिवाराधना के लिए आसन पर बैठे हुए थे। उगना ने फूल लाने में इतनी देर लगा दी कि कवि-पत्नी क्रोधित हो कर उसे मारने दौड़ी। यह देख कर विद्यापति धर्मसंकट में फँस गये। उन्हें बाध्य हो कर कहना पड़ा, **''इन्हें मत मारो, यह तो साक्षात शिव हैं।''** बस, फिर तो शर्त्त टूटी और शिव लुप्त हो गये।

मैथिल स्त्रियाँ अपने विवाह के अगले दिन से ही सुदीर्घ और सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए **''गौर''** पूजती हैं। इसके लिए नवपरिणीता को एक छोटी डिबिया (सपरी) में सिन्दूर और एक समूची सुपाड़ी दी जाती है जिसे वह जीवन पर्यन्त साथ रखती है। इस सपरी में रखा सिन्दूर 'अहिवात' (सौभाग्य) का प्रतीक है और सुपाड़ी शिव-पार्वती के संयुक्त रूप का प्रतीक है। सपरी में ''लिंग'' की तरह स्थित सुपाड़ी पर चुटकी से सिन्दूर डालती हुई स्त्रियाँ शिव-पार्वती से अपने पति के प्रति मंगल कामना करती हैं।


श्रीगणेशजी

महादेव




पंचानन शिव

अर्धनारीश्वर

प्रजापति आरम्भ में एक था। जब उसके मन में सृष्टि की इच्छा हुई तब उसने अपने शरीर के दो खण्ड कर के आधे में पुरुष और आधे में स्त्रीभाव का निर्माण किया। शिव-पार्वती के समन्वित स्वरूप को ही ''अर्धनारीश्वर'' कहा गया है। शिव के अर्धनारीश्वर भाव का सृष्टि-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। कथा है कि प्रारम्भ में ब्रह्मा केवल पुरुष-भाव से सृष्टि करते थे। इस विधि से उन्हें प्रजा-सृष्टि के कार्य में सफलता नहीं मिली। अन्त में उन्होंने शिव की आराधना की। शिव ने उन्हें 'अर्धनारीश्वर' स्वरूप में दर्शन दिया जिससे ब्रह्मा को सृष्टि- विधान की सही युक्ति ज्ञात हुई और स्त्री-पुरुष के संयोग से सृष्टि का क्रम आगे बढ़ा।

अर्धनारीश्वर का प्रतीकात्मक भाव यह है कि सृष्टि के लिए पुरुषतत्व और स्त्रीतत्व दोनो के मैथुनधर्म की आवश्यकता होती है। इस पृथ्वी पर जहाँ तक हम प्राणवन्त सृष्टि का विस्तार देखते हैं, वहाँ तक पिता द्वारा माता के गर्भधारण से प्रजा अर्थात मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लतादि समस्त जीवों की उत्पत्ति होती है। सृष्टि के इस आदिभूत मातृत्व और पितृत्व को ही पौराणिक प्रतीक भाषा में अर्धनारीश्वर कहा जाता है। यही शिव और पार्वती हैं। यही पिता और माता हैं।

वैदिक साहित्य के अनुसार, जो शिव हैं, वही रुद्र हैं, वही पुरुष हैं; और जो पार्वती हैं, वही अम्बिका हैं, वही स्त्रीतत्व हैं। पुरुष में अग्नितत्व प्रधान होता है और स्त्री में सोम प्रधान होता है, किन्तु वैदिक प्रमाण यह है कि सोम अग्नि के साथ ही उपस्थित रहता है। अर्थात जहाँ-जहाँ अग्नि है, वहीं आधा भाग सोम का भी है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो स्त्री है उसके अभ्यन्तर में आधा भाग पुरुषतत्व विद्यमान रहता है, जैसे पुरुष के अभ्यन्तर में स्त्रीतत्व। इसी अर्थ में, स्त्री का शोणित आग्नेय और पुरुष का शुक्र सौम्य भाव से युक्त रहता है। शुक्र और शोणित अथवा 'वृषा' और 'योषा' ही विज्ञान की भाषा में नर और मादा कहे जाते हैं। पुरुष द्वारा नारी में जो बीजार्पण होता है, नारी अग्नि के उस अंश को अपने गर्भ में ले कर अपनी मात्रा से उसका संवर्द्धन करती है और उसी से प्रजा की सृष्टि होती है। अग्नि में सोम की आहुति या अग्नि

और सोम का समन्वय ही शिव और शक्ति का संयोग है। शक्ति, जिसकी अनुपस्थिति में शिव भी शव या निष्क्रिय हो जाता है और जिस शक्ति से संयुक्त होते ही शिव तत्क्षण अपने पंचकर्म में प्रवृत हो जाता है। शिव और शक्ति का यह ऐक्यभाव ही ''पार्वतीपरमेश्वर'' अथवा ''अर्धनारीश्वर'' रूप है।




अर्धनारीश्वर

ब्रह्मा

ब्रह्मा का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है, किन्तु वैदिक साहित्य में उसे पौराणिक साहित्य की तरह पूजनीय नहीं माना गया है। पौराणिक ब्रह्मा सर्वोच्च त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) में से एक है। वेद में इन्हें प्रजापति कहा गया है। समस्त सजीव-निर्जीव वस्तुओं से गठित इस चराचर जगत के सृष्टिकर्त्ता, निर्माता-शिल्पी होने के कारण इन्हें शिल्प-कलाओं का अधिष्ठाता देव भी माना गया है।

ब्रह्मा की उत्पत्ति के सम्बंध में अनेक मत हैं। पौराणिक परम्पराओं के अनुसार इनकी उत्पत्ति विष्णु की नाभि से निकले कमल से हुई है और उसी कमलासन पर ये अवस्थित होते हैं। मनुस्मृति के अनुसार, विशालतम स्वर्ण-अण्ड से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। रामायण के अनुसार, ब्रह्मा की उत्पत्ति अन्तरिक्ष से हुई जिसने संसार की रचना के बाद सभी प्रकार के जीवों की उत्पत्ति के लिए काश्यप नामक पुत्र उत्पन्न किया। समस्त मानव जाति की जिनसे उत्पत्ति हुई वह मनु इसी काश्यप के प्रपौत्र थे। पुराणों में नारद को ब्रह्मा का मानस पुत्र कहा गया है।

ब्रह्मा के चार मुख हैं जिनसे चारों वेदों का उदय हुआ है। इनकी दो स्त्रियाँ बतायी गई हैं -- सरस्वती और गायत्री। मूर्तिविधान के अनुसार, ब्रह्मा की दाहिनी ओर सावित्री का स्थान और बाँयी ओर सरस्वती का स्थान है किन्तु मत्स्य पुराण के अनुसार सावित्री का स्थान ब्रह्मा के बाँयी ओर तथा सरस्वती का दाहिनी ओर है। कथा है कि कभी ब्रह्मा के पाँच मुख थे किन्तु शिव ने अपने तीसरे नेत्र से एक मुख को नष्ट कर दिया, तब से वे चार मुख वाले, चतुरानन हो गये। वैदिक और पौराणिक ग्रन्थों में ब्रह्मा अनेक नामों से जाने जाते हैं --- ब्रह्मा, धाता, आत्मभू, सुरज्येष्ठ, परमेष्ठी, पितामह, हिरण्यगर्भ, लोकेश, स्वयंभू, चतुरानन, अब्जयोनि, द्रुहिण, विरिंचि, कमलासन, स्रष्टा, प्रजापति, विधि, विधाता आदि।

मिथिला में ब्रह्मा की उपासना मुख्यतः शिल्पियों और यन्त्रकर्मियों के बीच ही प्रचलित है किन्तु विवाहादि उपनयन संस्कार के मंगल गीतों में ब्रह्मा

आदि-स्मरणीय देव के रूप में मान्य हैं। जादू-टोना, झाड़-फूँक के मन्त्रों में ब्रह्मा परमगुरु और मन्त्रों के अधिष्ठाता के रूप में मान्य हैं --

"जय काली, कंकाली वाली,
ब्रह्मा की चेली, इन्द्र की साली।"



विष्णु

विष्णु का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है जहाँ उसे सौर देवता के रूप में मान्यता है। सर्वत्र फैलने वाली व्यापिनी शक्ति से सम्पन्न सूर्य ही वेदों में "विष्णु" के नाम से चर्चित हुआ है। ऋग्वेद में जिस सविता की प्रशंसा-अभ्यर्थना की गयी है, 'तीन डगों' में समस्त विश्व को माप डालना उस विष्णु का विशिष्ट कार्य है --

"त्रींण्येक ऊरगायो विचक्रमे यत्र देवासो मदन्ति" --- (ऋग्वेद) **"विष्णु ने तीन पैरों में त्रैलोक्य को नाप लिया। उनके इस कर्म से देवता हर्षित हुए। वे अनेकों की स्तुति के पात्र हैं।"** प्रायः इसी अवधारणा की पुष्टि बाद के पुराणकारों ने विष्णु के वामनावतार में की है जब उसने राजा बलि से 'तीन डग भूमि' माँग कर उसे त्रैलोक्य-विहीन कर दिया।

वर्तमान पौराणिक धर्म-परम्परा में वैष्णव अवधारणा का न्यास भारतीय इतिहास के गुप्तकाल : चौथी शताब्दी में हुआ। गुप्तकाल के शासन-काल में वैष्णव धर्म उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। उस युग में विष्णु और उसके कई अवतार मान्य थे। अनेक गुप्त-शासक वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, अतः उन्होंने इस धर्म को राज्याश्रय प्रदान किया। इस वंश के शासकों की मुद्राओं पर भी विष्णु के प्रतीकों जैसे वाहन गरुड़, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी को उत्कीर्ण कराया गया था। गुप्तकाल में वैष्णव धर्म का प्रसार न केवल भारत वल्कि दक्षिण-पूर्व एशिया, कम्बोडिया, हिन्दचीन, मलाया और इन्डोनेशिया तक हुआ। मिथिला में वैष्णव धर्म का प्रावल्य कर्णाटक-वंशी राजाओं के काल में, ईस्वी सन 1,097 के बाद हुआ।

वर्तमान पौराणिक परम्परा में "ब्रह्म-विष्णु-शिव" को सर्वाधिक प्रधान देवता माना गया है। इन तीनो देवों के सामूहिक अभिधान को "त्रिमूर्ति" कहते हैं। इनमें से ब्रह्मा उत्पत्ति के देवता हैं जो विष्णु के नाभि-कमल पर स्थित रह कर समग्र विश्व की रचना करते हैं। विष्णु सृष्टि के क्रम को जारी रखने तथा विश्व-प्रजा का पालन करने के कार्य करते हैं और शिव उस प्रजा का संहार तथा लय करते हैं ताकि सृष्टि का क्रम सतत रूप से आगे बढ़ता रहे।

पौराणिक साहित्यों में विष्णु के सहस्र नामों का उल्लेख है। **अमरकोष** में विष्णु के नामों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है – विष्णु, नारायण, कृष्ण, वैकुण्ठ, विष्टरश्रवा, दामोदर, हृषिकेश, केशव, माधव, स्वभू:, दैत्यारि, पुण्डरीकाक्ष, गोविन्द, गरुडध्वज, पीताम्बर, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, इन्द्रावरज, चक्रपाणि, चतुर्भुज, पद्मनाभ, मधुरिपु, वासुदेव, त्रिविक्रम, देवकीनन्दन, शौरि, पुरुषोत्तम, श्रीपति, वनमाली, वलिध्वंसी, कंसाराति, अधोक्षज, विश्वंभर, विधु, श्रीवत्सलांछन आदि।

वह जगन्नाथ हैं। सभी लोकों के स्वामी 'नारायण' (नार = जल; अयन = घर, स्थान; नारायण = जल पर निवास करने वाला) क्षीर-सागर में शेषनाग के ऊपर शयन करते हैं और **''शेषशायी''** के नाम से प्रख्यात हैं। इनकी पत्नी लक्ष्मी शोभा, समृद्धि और सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं।

विष्णु के अवतार

अवतार का अर्थ होता है किसी देवता का लौकिक शरीर धारण करना; मरणशील प्राणी की तरह जन्म लेना। इस प्रकार भगवान का अपनी स्वातंत्र्य शक्ति के द्वारा भौतिक जगत में प्रकट होना **''अवतार''** कहलाता है। पौराणिक शास्त्रों में अवतारवाद की विस्तृत व्याख्या की गई है, किन्तु इसके मौलिक और प्राचीनतम आधार हमें वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। प्रजापति ने संसार के कल्याण के लिए अनेक बार अनेक रूपों को धारण किया।

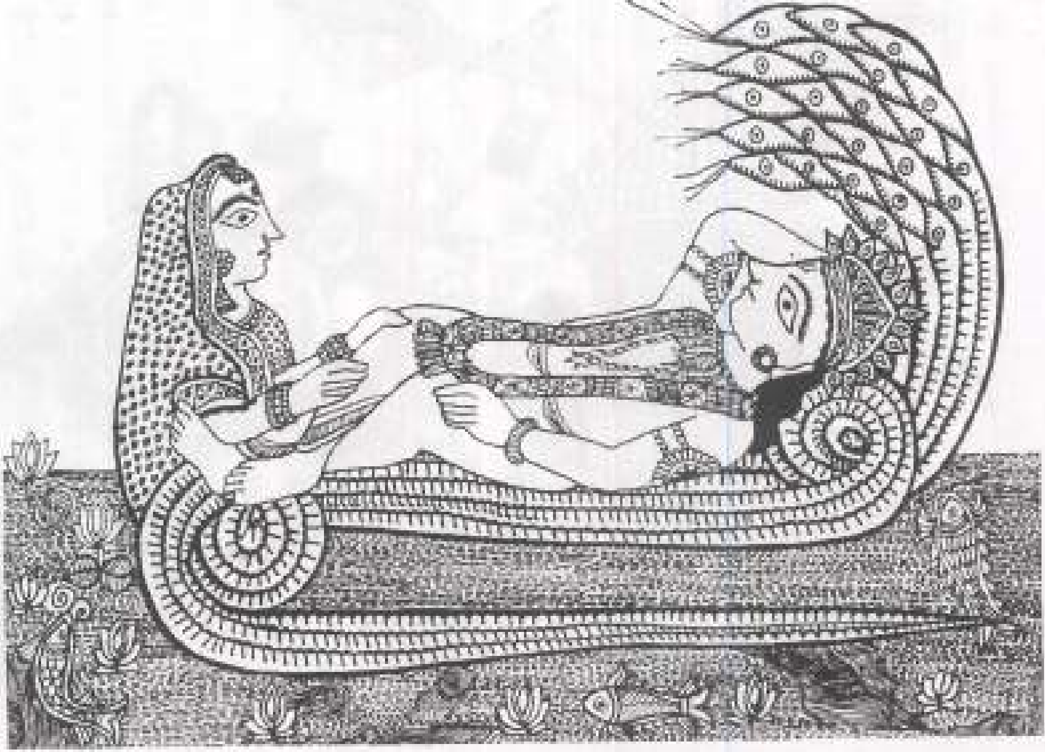
पुराणों का मत है कि 'ऋत' (सत्य, उचित, दैवी नियम) के कायम रहने पर ही समाज या संसार की व्यवस्था बनी रहती है, और किसी कारणवश जब समाज में ऋत के स्थान पर अनृत या धर्म के स्थान पर अधर्म की प्रबलता हो जाती है तो संसार का विनाश अवश्यंभावी हो जाता है। इस अवस्था से समाज को उबारने के लिए भगवान अवतार ग्रहण करते हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में विष्णु के 24 अवतारों का उल्लेख है, किन्तु **दशावतार** की कल्पना सर्वाधिक लोकप्रिय है। दशावतार के अन्तर्गत दो पानी वाले जीव -- मत्स्य और कच्छप; दो जलथलचारी जीव -- वराह तथा नृसिंह; लघुप्राणी -- वामन; तीन राम -- परशुराम, दाशरथि राम और बलराम; बुद्ध तथा कल्कि आते हैं। महाभारत में बुद्ध के स्थान पर 'हंस' को रखा गया है; भागवत में कृष्ण के स्थान पर बलराम को लिया गया है जबकि मिथिला में कृष्ण को दशावतार का प्रमुख देवता माना गया है। मिथिला के कृष्ण मात्र एक अवतारी नहीं बल्कि सद्यः परमेश्वर हैं। मैथिल कर्ण-कायस्थों के विवाह में (वर पक्ष वाले) दुलहन के लिए उपहार स्वरूप जो आभूषण ले जाते हैं, वह एक ऐसे कागज में विशेष रूप से लिपटाया जाता है जिस पर लाल रंग से, कृष्ण समेत दशावतार चित्रित रहता है। कन्या-पक्ष वालों के यहाँ ''कोबरघर'' की भित्ति पर अनिवार्य रूप से दशावतार लिखा जाता है।

मत्स्यावतार

भगवान विष्णु का प्रथम अवतार मत्स्यावतार है। प्रलयकाल उपस्थित होने पर जब त्रिलोक जल-मग्न हो गया तब महासमुद्र में सोए हुए ब्रह्मा के मुख से चार वेदों की उत्पत्ति हुई। उन वेदों को हयग्रीव नामक दानव ने चुरा लिया। इन्हीं वेदों के उद्धार के लिए विष्णु ने ''**मत्स्यावतार**'' धारण किया। मत्स्यावतार की कथा से सृष्टि के आदि विकास पर प्रकाश पड़ता है। वैज्ञानिक मान्यताओं के आधार पर सृष्टि का प्रथम जीव मत्स्य ही है।


विष्णु



शेषशायी विष्णु


मत्स्यावतार

कच्छपावतार

पौराणिक कथाओं के अनुसार, देवता और दानवों के बीच वर्चस्व को ले कर प्रायः युद्ध होते रहते थे। इन देवासुर युद्धों से दोनो पक्षों के धन और जन की अपार क्षति होती रहती थी। उस जन-हानि से बचने के लिए अमरत्व प्रदान करने वाली किसी शक्ति की खोज में देवगण पितामह ब्रह्मा के पास गये। देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न हो कर ब्रह्मा ने कहा -- "देवताओं ! आप लोग दानवराज बलि से मित्रतापूर्ण सम्बंध बढ़ावें और दानवों के साथ मिल कर समुद्र मथने की तैयारी करें। समुद्र-मन्थन के अन्त में अमृत निकलेगा। उस अमृत का पान करने से आप सभी अमर हो जायेंगे।"

ब्रह्मा के निर्देशानुसार देवताओं ने दानवों से समझौता किया और उन्हीं के साथ मिल कर समुद्र-मन्थन की तैयारी की। उस अभूतपूर्व कठिन कार्य के लिए वासुकि नाग की रस्सी और मन्दराचल पर्वत को मथानी बना कर समुद्र मन्थन का कार्य प्रारम्भ हुआ। परन्तु जैसे ही मन्थन शुरू हुआ कि मन्दराचल ही समुद्र में डूबने लगा। इस स्थिति से निराश देवताओं ने भगवान विष्णु से सहायता माँगी। अन्तर्यामी भगवान विष्णु ने कार्यसिद्धि के लिए श्रीगणेशजी की पूजा करने की सलाह दी। विष्णु की सलाह पर देवगण गणेश-पूजन में लग गये। इसी अभ्यन्तर लीलाधारी भगवान विष्णु ने कच्छप रूप धारण कर मन्दराचल को अपनी पीठ पर उठा लिया और इसके बाद समुद्र-मन्थन प्रारम्भ हुआ।

वासुकि नाग को सिर की तरफ से दानव और पूँछ की तरफ से देवताओं ने पकड़ रखा था। मथते - मथते बहुत समय बीत गया फिर भी समुद्र से कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। तब श्रीहरि विष्णु ने सहस्रबाहु बन कर दोनो तरफ से मथना प्रारम्भ किया। समुद्र के प्रचण्ड मन्थन से चौदह प्रकार की अनुपम वस्तुएँ प्राप्त हुईं --- विष, कामधेनु गाय, उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, कौस्तुभ मणि, कल्पवृक्ष, अप्सराएँ, लक्ष्मी, सुरा, धनुष, चन्द्रमा, शंख, धन्वन्तरि और अमृत।

देवताओं ने छल से सारा अमृत पी लिया, वे अमर हो गये।

कच्छपावतार



वाराह अवतार

एक बार दानव हिरण्याक्ष पृथ्वी को ले कर पाताल में छिप गया था। पृथ्वी का उद्धार करने के लिए उस समय भगवान विष्णु ने वाराह रूप धारण किया। उन्होंने हिरण्याक्ष का वध करके पृथ्वी को संकट से मुक्त किया था। पुराणों में कथा है कि एक बार सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने मनु को अपनी पत्नी शतरूपा से अपने ही समान गुण-सम्पन्न संतान उत्पन्न करके पृथ्वी का पालन करते हुए श्रीहरि की आराधना का आदेश दिया। उस समय हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को पाताल की अथाह जलराशि में छिपा दिया था। इसलिए मनु ने ब्रह्मा से सशंकोच पूछा कि जब पृथ्वी ही नहीं बची तो उनकी सन्तति कहाँ वास करेगी। मनु का यह प्रश्न सुन कर ब्रह्मा चिन्ता में पड़ गये और सोचने लगे कि पृथ्वी को किस प्रकार रसातल से बाहर निकाला जाय। उसी समय ब्रह्मा की नाक से अचानक अंगूठे के बराबर आकार का एक वाराह शिशु निकला। धीरे-धीरे वह शिशु विशाल आकार का हो गया। वही वाराह रूप भगवान वाण के समान पैने अपने खुरों से जल को चीरते हुए उस अथाह जलराशि के पार पहुँचे और जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपनी दाढ़ पर उठाए रसातल से बाहर आए। रसातल से बाहर निकल कर वाराह भगवान ने अपने खुरों से जल को स्तम्भित कर पृथ्वी को पुनः स्थापित किया। वाराह रूप विष्णु को पुराणों में "आदिवाराह" भी कहा गया है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार, पृथ्वी को पाताल से मुक्त कराने के क्रम में वाराह रूप विष्णु ने पृथ्वी के साथ सम्भोग किया था जिससे नरकासुर का जन्म हुआ। आगे चल कर यह असुर प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) का राजा हुआ। इसने अनेक राजाओं और तपस्वियों की सोलह हजार स्त्रियों को बन्दी बना रखा था। इन्द्र की प्रार्थना पर कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से नरकासुर का वध कर दिया। बन्धन-मुक्त सभी सोलह हजार स्त्रियों की प्रार्थना पर कृष्ण उन्हें अपनी पत्नी बना कर द्वारिका ले आये।

वाराह अवतार



नृसिंह अवतार

पुराणों में कथा है कि ब्रह्मा से वर प्राप्त कर दानवराज हिरण्यकशिपु समझने लगा था कि वह अमर हो गया और वह इसी अहंकार में देवताओं-मनुष्यों को बहुत कष्ट देने लगा। दानवों के घोर अत्याचार से पीड़ित देवताओं ने उद्धार के लिए विष्णु भगवान की प्रार्थना की। देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु भगवान ने नृसिंह का रूप धारण किया और हिरण्यकशिपु का बध करने के लिए उसकी सभा में पहुँचे। नृसिंह अवतार विष्णु ने हिरण्यकशिपु का उदर फाड़ कर उसे मृत्यु प्रदान किया और देवों के कष्ट का निवारण किया। नरसिंह भगवान विष्णु का दूसरा नाम नरहरि भी है।

वामन अवतार

कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ थीं – अदिति और दिति। इन्द्र, वरुण आदि देवता ऋग्वेद की मातृशक्ति या वेदमातृ अदिति और कश्यप की सन्तान हैं और दैत्य-असुर के माता-पिता दिति और कश्यप हैं। कथा है कि एक बार बलवान दैत्यों ने बलि के नुतृत्व में स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। स्वर्गपति देवराज इन्द्र शक्तिहीन भिखारी की तरह दर-दर भटकने लगे। दैत्यों ने वेदमाता अदिति को भी बहुत तरह से कष्ट दिया और उनका सर्वस्व हरण कर लिया। तब माता अदिति ने भगवान विष्णु की आराधना की। व्रत के अन्तिम दिन भगवान ने प्रकट हो कर अदिति से कहा, ''देवि ! चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे पुत्ररूप में जन्म लूँगा और इन्द्र का छोटा भाई बन कर उनका हित करूँगा।'' यह कह कर विष्णु अन्तर्धान हो गये।

अपने वचनानुसार भगवान ने विजया द्वादसी के दिन अभिजित मुहूर्त्त में अदिति के गर्भ से जन्म लिया। ये चतुर्भुजधारी थे और उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं कमल सुशोभित हो रहे थे। भगवान चतुर्भुज ने कश्यप और अदिति के देखते-देखते वामन ब्रह्मचारी का रूप धारण कर लिया। उसी समय दैत्यों के राजा बलि नर्मदा नदी के तट पर यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। भगवान वामन ने यज्ञ-स्थल के लिए प्रस्थान किया। उनकी कमर में मूँज की मेखला थी और वह यज्ञोपवित धारण किये थे।भगवान वामन के शरीर पर मृगचर्म और सिर पर जटा थी। इसी प्रकार बौने ब्राह्मण के वेश में ब्रह्मचारी बने हुए भगवान ने बलि के यज्ञ-स्थल में प्रवेश किया। लीलाधारी वामन को देख कर बलि का हृदय बहुत प्रसन्न हुआ। उसने भगवान को उत्तम असान पर बैठाया और अनेक प्रकार से अभ्यागत ब्रह्मचारी की पूजा की।

अतिथि सत्कार के पश्चात दानवराज बलि ने वामन भगवान से कुछ भी स्वेच्छया माँगने का अनुरोध किया। बलि के आग्रह करने पर उन्होंने मात्र तीन पग भूमि बलि से माँगी। दैत्यों के गुरु शुक्रचार्य ने दानवेन्द्र बलि से वामन को यह दान देने के लिए मना किया किन्तु बलि ने अपना वचन नहीं तोड़ा। वामन भगवान ने अपने शरीर का विस्तार करके एक डग से बलि की समस्त पृथ्वी, शरीर से आकाश और भुजाओं से दिशाएँ घेर कर दूसरे डग से स्वर्ग को नाप लिया। तीसरा डग रखने को कोई स्थान ही नहीं बचा। तब बलि ने "तीन पग दान" का अपना वचन पूरा करने के लिए तीसरा पग अपने शीश पर रखने को कहा। इस प्रकार दानवेन्द्र बलि ने अपना शरीर सहित सर्वस्व दान कर वामन भगवान को प्रसन्न किया। भगवान ने प्रसन्न हो कर उसे सावर्णि मन्वन्तर में इन्द्र होने तथा विश्वकर्मा द्वारा निर्मित सुतल लोक में रहने का वरदान दिया।



नृसिंह अवतार

वामन अवतार



परशुराम अवतार

पौराणिक कथा है कि पृथ्वी पर हैहय वंशीय क्षत्रिय राजाओं का अत्याचार बहुत बढ़ गया था। चारों दिशाओं में सदाचारी प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। ऐसे समय में भगवान विष्णु परशुराम के रूप में ऋषि जमदग्नि की पत्नी रेणुका के गर्भ से जन्म ले कर अवतार धारण किए। इनका वास्तविक नाम तो राम था, किन्तु इनकी शिवभक्ति और कठोर साधना से प्रसन्न हो कर औढरदानी शंकर ने इन्हें अपना अमोघ अस्त्र 'परशु' प्रदान किया था, जिसे ये सदैव धारण किए रहते थे। इस गुण के कारण ये परशुराम के नाम से प्रख्यात हुए।

इन्होंने अपने पिता जमदग्नि के वध को निमित्त बना कर एक्कीस बार पृथ्वी के अत्याचारी क्षत्रियों का समूल वध कर दिया। इस प्रकार भगवान ने अत्याचारियों के भार से पृथ्वी को मुक्त किया। रामावतार में रामचन्द्र द्वारा शिव का धनुष तोड़ने पर परशुराम क्रुद्ध हो कर आये थे, किन्तु परीक्षा के बाद जब उन्हें ज्ञान हुआ कि रामचन्द्र विष्णु के अवतार हैं तो उनकी वन्दना करके परशुराम तपस्या करने महेन्द्र पर्वत पर चले गये।

परशुराम अवतार



रामावतार

प्राचीन कथाओं के अनुसार, श्रीहरि विष्णु के दो सेवक द्वारपाल थे, जिनके नाम जय-विजय थे। सनकादि ब्रह्मर्षियों के शाप से ये घोर निशाचर कुल में पैदा हुए और उनके नाम रावण और कुम्भकर्ण पड़े। वे अत्यन्त क्रूर और अत्याचारी शासक थे। उनके अन्याय और अत्याचार से पृथ्वी काँप उठी। पृथ्वी असुर-समाज के बोझ से मुक्त होना चाहती थी। इस कामना से वह ब्रह्मादि अनेक देवताओं के साथ श्रीहरि विष्णु की शरण में गयी। पृथ्वी और देवताओं की सम्मिलित प्रार्थना से परब्रह्म परमेश्वर ने अयोध्या के राजा दशरथ की महारानी कौशल्या के गर्भ से राम के रूप में अवतार लिया।

रामकथा पर आधारित साहित्यों का विश्व की अनेक भाषाओं में प्रचुर भाण्डार है। वाल्मीकि ऋषि अयोध्या के राजा दशरथ के समकालीन थे। उनके द्वारा रचित **"रामायण"** रामकथा का प्राचीनतम साहित्य है। मिथिला की प्राचीन राजधानी जनकपुर में सीताजी का स्वयंवर हो रहा था। वहाँ भगवान शंकर का विशाल धनुष रखा गया था जिसे उठाने और तोड़ने में सभी वीर असफल रहे। श्रीराम ने उस धनुष को तोड़ कर सीताजी को प्राप्त किया।

राजा दशरथ की आज्ञा से श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ। पिता की आज्ञा को सर्वोपरि मान कर राम ने राज्य-सुख और सत्ता का त्याग कर अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष वनों में रह कर बिताया। वन में ही लंकापति रावण ने छल से सीता का हरण कर लिया। सीताजी के वियोग में श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण के साथ दुःख से व्याकुल हो कर वन-वन भटकते रहे। हनुमान सीता की खोज में लंका गये। वहाँ सीताजी से मिल कर उन्हें श्रीराम का संदेश सुनाया। हनुमान के लंका से लौटने के बाद रावण की राक्षसी सेना और श्रीराम की वानरी सेना के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में राक्षसों का सबन्धु-बान्धव सर्वनाश हो गया। श्रीराम विजयी हुए। तब तक वनवास की अवधि भी बीत गई। अयोध्या लौट कर लीलाधारी भगवान पुरुषोत्तम श्रीराम ने रामराज्य की स्थापना की।

रामावतार



कृष्णावतार

पौराणिक दशावतार में **श्रीकृष्ण** विष्णु के आठवें अवतार के रूप में प्रसिद्ध हैं। बहुत विद्वान **'कृष्ण'** को सदेह विष्णु मान कर उपासना करते हैं और 'बलराम' को कृष्ण के स्थान पर आठवाँ अवतार मानते हैं। वर्त्तमान हिन्दू समाज में संभवतः शिव के बाद सर्वाधिक पूज्य देवता कृष्ण हैं। साहित्य और कला के क्षेत्र में भी कृष्ण का महत्व अधिक है।

कृष्ण का जन्म मथुरा के अत्याचारी शासक कंस के कारागार में हुआ था। कथा है कि राजा शूरसेन के पुत्र वसुदेव जब देवकी से विवाह के बाद विदाई करा कर उसे अपने घर ला रहे थे तो देवकी का भाई, राजा उग्रसेन का पुत्र कंस स्वयं अपनी बहन को रथ पर बैठा कर उसे ससुराल ले जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। उसी समय कंस को सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई -- "अरे मुर्ख ! जिसे तुम रथ में बैठा कर लिये जा रहा है, उसी की आठवीं सन्तान तुम्हें मार डालेगी।" आकाशवाणी सुन कर कंस भयभीत हो गया और वह देवकी को ही मार डालने को उद्यत हो गया। वसुदेव के अनुनय-विनय करने और शर्त्त करने पर कि देवकी को जब कभी सन्तान होगी वह उसे कंस को सुपुर्द कर देंगे, कंस ने देवकी की हत्या का विचार तो छोड़ दिया, किन्तु उसने बहन-बहनोई को कारागार में बन्द कर दिया। कारागार में बन्द रहते हुए ही वसुदेव और देवकी के सात पुत्र हुए जिन्हें कंस बिना देर किए मारता गया।

समय आने पर काल-कोठरी के भीतर बरसात की एक घनघोर रात को देवकी का आठवाँ पुत्र भी उत्पन्न हुआ। बच्चा के जन्म लेते ही योगमाया की प्रेरणा से कारागार के द्वार खुल गये और सभी प्रहरी-रक्षक नींद में बेसुध जहाँ-तहाँ पसर गये। अवसर अनुकूल देख कर वसुदेव ने नवजात शिशु को एक सूप में रख कर यमुना पार रहने वाले अपने मित्र नन्द के घर के लिए साहस और आत्मविश्वास के साथ विदा हुए। उसी समय नन्द की पत्नी यशोदा ने भी एक पुत्री को जन्म दिया था, किन्तु वसुदेव जब नन्द के घर पहुँचे उस समय यशोदा और अन्य सभी लोग गहरी निद्रा में सोये हुए थे। वसुदेव ने चुपचाप अपने

पुत्र को यशोदा की बगल में सुला दिया और उनकी नवजात कन्या को ले कर वे कारागार में लौट आये। सुबह होते ही कंस आठवें शिशु के जन्म का समाचार सुन कर कारागार में आया और देवकी से बच्चा ले लिया। एक अनुश्रुति के अनुसार, कंस ने जैसे ही शिशु को पत्थर पर पटकना चाहा, हाथ से छिटक कर वह बच्ची आकाश की ओर उड़ गई और विंध्याचल पर्वत पर विंध्यवासिनी देवी के रूप में प्रकट हुई।

इधर कंस अपने मृत्युदाता भाँजे की खोज में निरन्तर शिशु-वध में संलग्न था और उधर गोकुल में वही बालक कृष्ण नाम से अपने अत्याचारी मामा की नजर बचा कर, यशोदा और नन्दबाबा के स्नेह की छाँव में दैवी गति से बढ़ रहा था। गहरे नीले सागर के रंग वाला, निरभ्र नीले आकाश के रंग का वह बालक कृष्ण अप्रतिम सौन्दर्य और शक्ति तथा असाधारण प्रतिभा के साथ-साथ बाल-सुलभ नटखटपन से समस्त गोकुल वासियों का प्राणाधार बन चुका था। कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन अन्यायियों के शमन, पर्यावरण के संरक्षण, प्रेम और ज्ञान के प्रसार तथा निर्माण के लिए ध्वंश की अमर गाथा है।

बुद्धावतार

विष्णु के नौवें अवतार "**भगवान बुद्ध**" का जन्म आज से लगभग ढाइ हजार वर्ष पूर्व कपिलवस्तु (नेपाल) के पास लुम्बिनी वन में हुआ था। बुद्ध के पिता शुद्धोधन शाक्यों के राज्य कपिलवस्तु के शासक थे। बुद्ध की माता का नाम माया देवी था। माया देवी कपिलवस्तु से अपने पिता के घर जा रही थी, तभी लुम्बिनी के रास्ते में, दो साल वृक्षों के बीच में बुद्ध का जन्म हुआ था। बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था। उनके जन्म के सातवें दिन ही उनकी माँ माया देवी का देहान्त हो गया। माँ की मृत्यु के बाद सिद्धार्थ का पालन-पोषण उनकी मौसी और विमाता प्रजापति (गौतमी) ने किया।

बुद्ध बचपन से ही चिन्तनशील स्वभाव के थे। लोगों के दुःख को देख कर इनका हृदय करुणा से भर जाता था और वे दुःखों से मुक्ति का उपाय खोजने के प्रति चिन्तन-मग्न हो जाते थे। उनके पिता शुद्धोधन नहीं चाहते थे कि सिद्धार्थ का मन राजसी सुख और सांसारिक चक्र से विमुख हो। सांसारिक भोग-विलास में सिद्धार्थ के मन को उलझाये रखने के उद्येश से उनके पिता ने सोलह वर्ष की अवस्था में ही उनका विवाह रामग्राम के कोलिय गणराज्य की राजकुमारी यशोधरा से कर दिया। विवाह के बाद लगभग बारह वर्षों तक सिद्धार्थ ने गृहस्थ जीवन बिताया और एक पुत्र, राहुल को जन्म दिया किन्तु उनका हृदय सदैव संसार के दुःखों से अशांत ही रहा। अतः एक रात सिद्धार्थ यशोधरा और राहुल को सोता छोड़ कर ज्ञान की खोज में निकल पड़े, साधना के पथ पर।

घर छोड़ने के बाद सिद्धार्थ ज्ञान की खोज में इधर-उधर भटकते रहे। वर्षों की खोज, निराहार तपस्या और समाधि के बाद एक बैसाख पूर्णिमा के दिन उन्हें सच्चे ज्ञान का प्रकाश मिला। गया तीर्थ के जिस क्षेत्र में उन्हें ज्ञान का प्रकाश (सम्बोधि) मिला उस क्षेत्र को 'बोधगया' और जिस वृक्ष के नीचे उन्होंने समाधि लगाई थी, उसे 'बोधिवृक्ष' कहा जाने लगा।

महात्मा बुद्ध के अनुसार, शरीर को कष्ट देने से अथवा अत्यन्त भोग-विलास में रहने से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। इसके लिए मध्यमार्ग को अपनाना चाहिए। उनकी शिक्षा का सार यही है कि यह संसार दुःखमय है; सांसारिक सुखों को पाने की तृष्णा ही दुःखों के मूल कारण हैं; राग, द्वेष और अहंकार के त्याग से ही जीव की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। भगवान बुद्ध ने मनुष्य की उन्नति के आठ साधन बताए हैं — सत्य, नम्रता, सदाचार, सद्विचार, सद्गुण, सद्बुद्धि, ऊँचा लक्ष्य, और उत्तम ध्यान।

भगवान बुद्ध आजीवन नगर-नगर घूमते हुए अपने धर्म-सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे और असंख्य शिष्य बनाए। उनकी पत्नी, पुत्र और विमाता भी धर्म-संघ में सम्मिलित हुईं। अस्सी वर्ष की अवस्था में, कुशीनगर में बैसाख पूर्णिमा के दिन अहिंसा के अवतार भगवान बुद्ध ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। इस घटना को 'महापरिनिर्वाण' कहते हैं।


कृष्णावतार


कृष्ण

बुद्धावतार



कल्कि अवतार

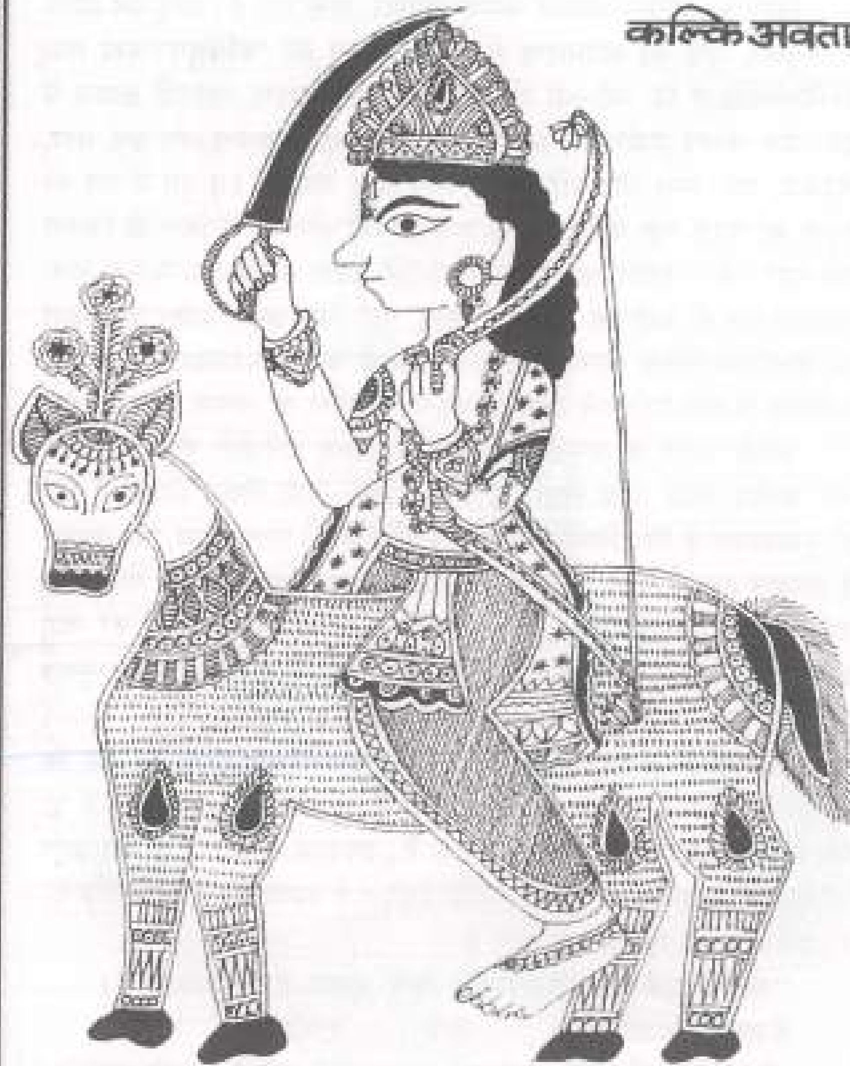
विष्णु का अन्तिम अवतार 'कल्कि अवतार' माना गया है। हिन्दू धर्म-शास्त्र के अनुसार, युगों की अवधारणा मे वर्तमान समय को **'कलियुग'** कहा गया है। कहा गया है कि ज्यों-ज्यों घोर कलियुग आता जायगा, त्यों-त्यों समाज में झूठ, लोभ, लालच, व्यभिचार, भ्रष्टाचार का प्रसार बढ़ता जायेगा और धर्म, सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा और सद्विचार का लोप होता जायगा। इस युग में धन को मनुष्य की सबसे बड़ी योग्यता माना जायगा। धन और पद के लिए जो जितना छल-कपट और अनीति का सहारा लेगा उसे उतना ही व्यवहार-कुशल माना जायगा। धन की प्रधानता के कारण हिंसा, चोरी और अनेक प्रकार के कुकर्मों को सामाजिक-नैतिक मान्यता प्राप्त हो जायगी जबकि परोपकार, सेवा और सद्विवेक के मार्ग पर चलने वालों को पग-पग पर कष्ट का सामना करना पड़ेगा।

कल्कि पुराण के अनुसार, कलियुग का अन्त होते-होते पृथ्वी पर हिंसा और जातीय संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जायेंगे। ऐसी विकट स्थिति में धर्म की पुनर्स्थापना के लिए विष्णु का कल्कि अवतार होगा। पुराणानुसार, इस अवतार में भगवान शम्भल नगर में जन्म लेंगे; उनका वाहन देवदत्त नामक घोड़ा और अस्त्र तलवार होगी। कल्कि रूप में अवतरित हो कर विष्णु 'कलि' का नाश करेंगे। इसके बाद भूलोक के समस्त अनाचारों की समाप्ति के साथ ही सुन्दर-सुखद समय का युग – **सतयुग** का आविर्भाव होगा।

मिथिलाचित्र में ''दशावतार'' का परम्परागत विशिष्ट महत्व है। जैसा कि इस शीर्षक पाठ के प्रारम्भ में बताया गया है, ''कोबर घर'' की भित्तियों पर दशावतार का चित्रण अनिवार्य माना गया है। उपनयन संस्कार में भी यह प्रसंग चित्रित किया जाता है। ऐसे शुभ अवसरों पर मिथिला में जयदेव रचित **''गीतगोविन्द''** के दशावतार-पद गाने का प्रचलन है –

''श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम शृणु सुखदं शुभदं भवसारम।
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे।।''

''हे दश रूपों को धारण करने वाले, जगत्स्वामिन ! श्रीहरे ! केशव भगवान ! आप मुझ जयदेव कवि की सरल भाषा में, संसार के सारस्वरूप, सुखप्रद एवं कल्याणप्रद स्तुति को सुने।''


कल्कि अवतार

हनुमान

माता अंजनी और पवन देव के पुत्र हनुमान को रुद्रावतार भी कहा गया है। देव, दानव और मानव सहित समस्त लोकों में सर्वश्रेष्ठ वीर, दैहिक, दैविक और भौतिक दुःखों से त्राण दिलाने वाले देव हनुमान के नामाकरण की कथा बहुत रोचक है।

कथा है कि जब ये बहुत छोटे शिशु थे, एक दिन इन्हें बहुत भूख लगी। तभी पालने में सोये और आकाश की तरफ टुकुर-टुकुर ताकते पवनपुत्र को उगता हुआ लाल सूर्य किसी पके फल की तरह लुभाने लगा। इन्होंने पालने में से ही एक छलांग लगाई और आकाश में ऊपर उठते चले गये। कुछ ही पल में ये सूर्य के_पास पहुँच गये और उसे पकड़ कर मुँह में डाल लिये। हनुमान द्वारा सूर्य को मुँह में रखते ही पृथ्वी और आकाश में हर जगह घुप्प अंधेरा छा गया। वह सूर्य-ग्रहण का दिन था, जब राहु सूर्य को अपना ग्रास बनाता है। राहु घबरा गया। वह समझ नहीं पाया, किस दूसरे राहु ने सूर्य को अपना ग्रास बनाया। शिकायत करने वह देवराज इन्द्र के पास गया। इन्द्र भी असमय के सूर्यग्रहण और अंधकार से बहुत घबराया हुआ था। वह राहु के साथ वहाँ पहुँचा जहाँ मारुति-नन्दन सूर्य को अपने मुँह में रखे खेल रहे थे।

शक्ति और सत्ता के मद में चूर, श्वेत हाथी ऐरावत पर सवार इन्द्र जब राहु के साथ हनुमान के पास पहुँचे तो हनुमान श्वेत रंग के उस सुन्दर और विशाल हाथी को भी कोई अनोखा फल समझ कर इन्द्र की ओर झपटे। तब तो इन्द्र को भी भय हो गया। उसने अपने आप को उस अद्भुत वीर बालक से बचाने के लिए अपने अस्त्र 'वज्र' से उसकी ठुड्डी (हनु) पर प्रहार किया। वज्र के प्रहार से हनुमान का मुँह खुल गया। सूर्य तो उनके मुँह से छिटक कर मुक्त हो गये, किन्तु वह शिशु आकाश से पृथ्वी पर गिर कर अचेत हो गया।

अपने पुत्र को पृथ्वी पर अचेत और उनकी ठुड्डी पर लगी चोट देख कर पवनदेव और अंजनी को बहुत क्रोध आया। क्रोध में पवनदेव ने बहना बन्द कर दिया। हवा के रुकते ही पृथ्वी पर वृक्ष-लता, मानव, पशु आदि सभी जीव दम घुट-घुट कर मरने लगे। हर तरफ त्राहि-त्राहि मच गई। इस संकट से संसार को बचाने के लिए ब्रह्मा के साथ इन्द्र सहित सभी देवता उस स्थान पर आये

जहाँ माता अंजनी और पवनदेव अपने अचेत पुत्र को घेर कर बैठे थे। देवताओं ने पुनः बहते रहने के लिए पवनदेव से प्रार्थना की। इन्द्र ने कहा, "मेरे वज्र से इस बालक का हनु (ठुड्डी) आहत हुआ है। इसलिए आज से इसका नाम **"हनुमान"** होगा और आज से इस महावीर बालक पर किसी तरह का अस्त्र-शस्त्र नहीं चल पायगा।" ब्रह्मा ने कहा, "वायुदेव, तुम्हारा यह पुत्र बल, विद्या और बुद्धि में सबसे अग्रगण्य होगा। तीनो लोकों में साहस, बल और भक्ति में कोई इसकी बराबरी नहीं कर सकेगा। सज्जन मनुष्यों के संकटों का मोचन करने के लिए ही पृथ्वी पर इसका अवतरण हुआ है।" ब्रह्मा सहित सभी देवों के वरदान से प्रसन्न वायुदेव फिर बहने लगे।

कहते हैं, अपने ऊपर किसी अस्त्र-शस्त्र का प्रभाव नहीं पड़ने का वरदान पा कर हनुमान बहुत नटखट हो गये थे और वन में तपस्वी ऋषि-मुनियों के बाग-बगीचों का बड़ा नुकशान किया करते थे। एक बार ऋषियों ने आपस में विचार कर इन्हें शाप दिया, " जब तक तुम्हें कोई याद नहीं दिलाये, तुम्हें अपनी वीरता का ज्ञान नहीं होगा।" सीता मैया ने हनुमान की भक्ति से प्रसन्न हो कर उन्हें अष्ट सिद्धि और नौ निधियों के दाता होने का वरदान दिया।

चित्रगुप्त

भगवान चित्रगुप्त चौदह यमदेवों में एक हैं। यह मुख्य आयु-गणक और कर्म-फल के आधार पर स्वर्ग-नर्क लोक के आवंटक हैं। कथा है कि सृष्टि के प्रथम दौर में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा मात्र सत्वगुण से मनुष्यों का निर्माण करते थे। इस प्रक्रिया से सृजित मनुष्य अपने सत्वगुण के कारण जन्म के साथ ही तपश्चर्या में लग जाते थे। सांसारिक माया-मोह और विषय-भोग में उनकी कोई रुचि नहीं होती थी जिस कारण संसार में प्रजा-सृष्टि का क्रम आगे नहीं बढ़ पा रहा था। इस समस्या से ब्रह्मा को तभी मुक्ति मिली जब उन्हें शिव ने उमा के साथ 'स्त्री-पुरुष-संयोग' के अर्धनारीश्वर रूप का दर्शन कराया। उस दर्शन से ब्रह्मा को प्रजा-सृष्टि की सही युक्ति का ज्ञान हुआ। तब से ब्रह्मा ने रज और वीर्य के संयोग से प्रजा-सृष्टि का कार्य प्रारम्भ किया।

नयी विधि से प्रजा-सृष्टि का कार्य प्रारम्भ करने के साथ ही व्यवस्थाजन्य कई समस्याएँ ब्रह्मा के समक्ष उपस्थित हुईं। इन समस्याओं के निदान का पहला चरण तब स्पष्ट हुआ जब महाकाल ने आयु और मृत्यु की रचना की। आयु की रचना के साथ ही समस्त देव-दानव-मानव आदि प्राणियों का जीवन-काल निश्चित हो गया, किन्तु चौदह भुवनों के इस ब्रह्माण्ड में कौन प्राणी कब उत्पन्न हुआ, विधाता द्वारा आवंटित उसकी आयु कितनी है और उसके जीवन में घटित कर्मों के आधार पर पाप-पुण्य की गणना कैसे हो, इसका उपाय ब्रह्मा की समझ में नहीं आया।

सृष्टि-नियमन की समस्या से ग्रस्त ब्रह्मा एक दिन बहुत चिन्तित थे। ब्रह्मा की चिन्ता के उस क्षण में अनायास उनकी काया से एक अद्‌भुत बालक का आविर्भाव हुआ, जो अनेक रंगों से निर्मित एक चित्र की तरह मनोरम था। उस तेजस्वी बालक का रोम-रोम ज्ञान और कर्म की आभा से प्रोद्‌भासित था। एक हाथ में लेखनी और दूसरे हाथ में मसिपात्र (दवात) धारण करने वाले उस दिव्य पुरुष ने ब्रह्मा से अपना परिचय और कर्म के सम्बंध में पूछा। उसी समय आकाशवाणी हुई, ''हे सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, सृष्टि के प्रबंधन के लिए तुम्हें जिस कर्त्ता की तलाश थी, उसका चित्रमय रूप तुम्हारी काया में ही गुप्तरूप से उपस्थित था, जिसे तुम नहीं देख पा रहे थे। तुम्हारी काया से उत्पन्न होने के कारण इस बालक की जाति-कोटि **''कायस्थ''** होगी और समस्त शिल्प-कलाओं में दक्ष इस अनुपम बालक का नाम **''चित्रगुप्त''** होगा। मर्त्यभुवन में उत्पन्न समस्त प्राणियों की आयु-मृत्यु और मृत्यु के उपरान्त कर्म-फल के आधार पर धर्म-अधर्म के लेख का विवेचन करना इसका प्रमुख कार्य होगा।''

मतान्तर से, चित्रगुप्त की उत्पत्ति समुद्र-मन्थन के समय लक्ष्मी के साथ ही हुई। इनकी दो पत्नियों का उल्लेख है। इनकी पहली स्त्री, सुशर्मा-पुत्री इड़ावती से चित्रगुप्त के आठ पुत्र हुए — मगध निवासी चारु, जिनका जातीय उपनाम दूरध्वज हुआ; ब्रह्मवर्त्त निवासी सुचारु, जिनका जातीय उपनाम अम्बष्ठ हुआ; गौरदेश निवासी चित्र, जिनका जातीय उपनाम भी गौर हुआ; सरयूपार निवासी मतिमान, जिनका जातीय उपनाम निगम हुआ; कर्णाटक निवासी हिमवान, जिनका जातीय उपनाम कर्ण हुआ; अहिदेश निवासी चित्रा, जिनका जातीय उपनाम

अष्ठाना हुआ; चित्रकूट निवासी अतीन्द्रीय, जिनका जातीय उपनाम वाल्मीकि हुआ और अलकापुरी निवासी अरुण, जिनका जातीय उपनाम कुलश्रेष्ठ हुआ।

चित्रगुप्त की दूसरी पत्नी, मनुपुत्री नन्दिनी से चार पुत्र हुए — मथुरा निवासी भानु, जो माथुर कहलाये; भटनागर निवासी चित्रभानु, जो भटनागर कहलाए; शंकपुर निवासी विश्वभानु, जो सक्सेना कहलाए और श्रीनगर निवासी वीर्यभानु, जो श्रीवास्तव कहलाए। वर्त्तमान समय में 'कायस्थ' जाति की इन बारहों शाखाओं के लोग चित्रगुप्त के ही वंशज कहे जाते हैं।

देवराज इन्द्र

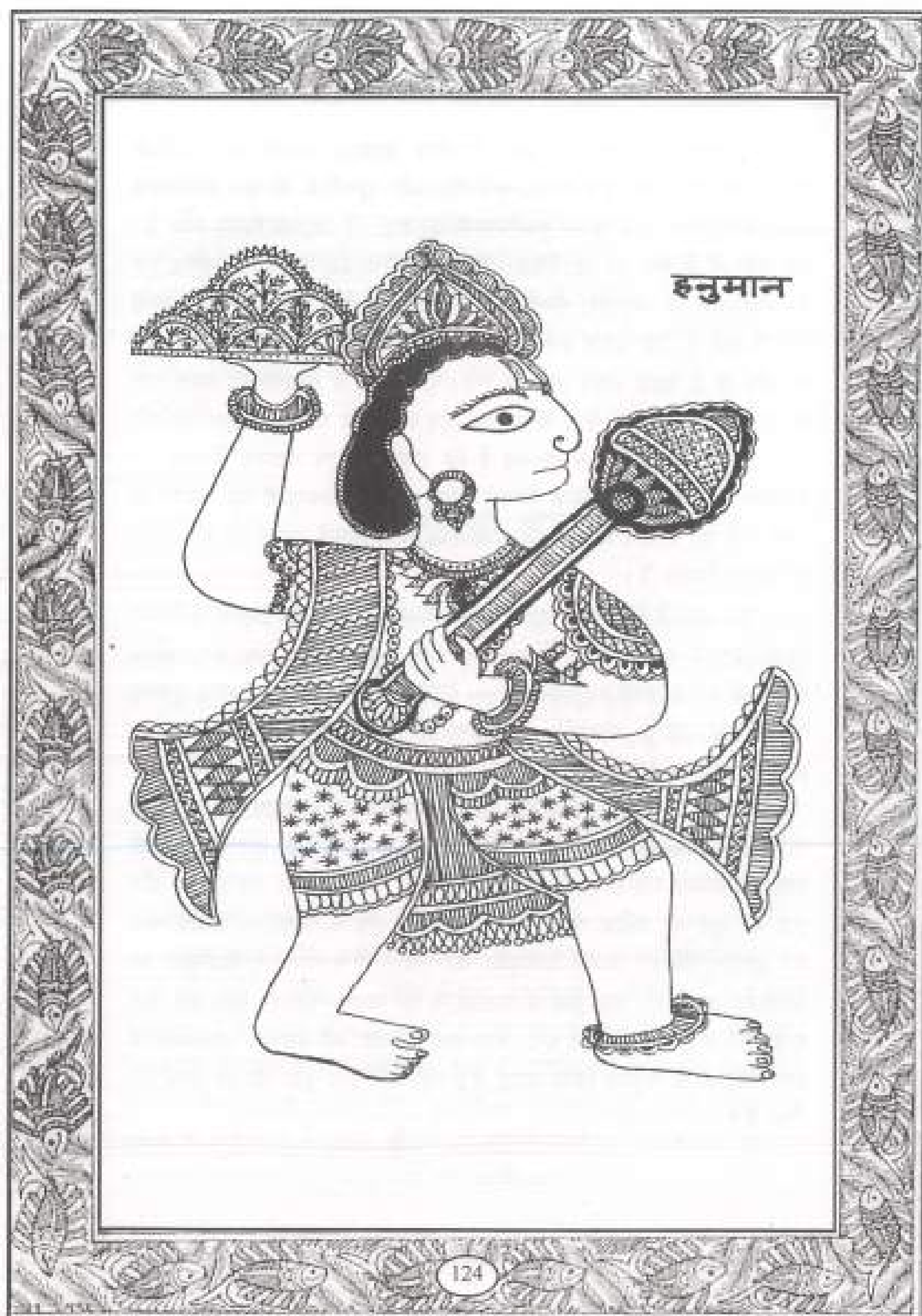
आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद मे इन्द्र को सर्वोच्च देवता और अतुलनीय शक्ति से सम्पन्न कह कर स्तुति की गई है। इन्द्र के जन्म की कथा रहस्यमय है। ऋग्वेद के अनुसार ये निष्टिग्रि के पुत्र थे। सहस्र मास तक अपनी माँ के गर्भ में रहने के बाद जब इनका जन्म हुआ तो ये पूर्ण युवा थे। अथर्ववेद के अनुसार, इनकी माता का नाम एकाष्टका और पिता का नाम सोम था। एकाष्टका ने घोर तपस्या करके इन्हें उत्पन्न किया था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, इनकी उत्पत्ति प्रजापति से हुई थी जबकि पुराणों के मतानुसार, इनके पिता कश्यप और माता अदिति थीं। ऋग्वेद के अनुसार, इन्द्र की कृपा से ही आर्यों ने दासों (अनार्यों) को पराजित करके उन्हें पहाड़ों में छिपने के लिए बाध्य किया।

एक कथा है कि अनार्यों के उपद्रव से आतंकित देवता प्रजापति के पास गए और कहा कि राजा के अभाव में युद्ध का आयोजन करना कठिन है। तब प्रजापति ने देवताओं से कहा कि ये इन्द्र को राजा बनने के लिए राजी करें। देवताओं ने प्रजापति के निर्देशानुसार इन्द्र की प्रार्थना की जिसे इन्द्र ने स्वीकार किया। तब से इन्द्र देवराज हुए। पुराणों में उल्लेख है कि वृत्रासुर अनार्य के संहार के लिए इन्द्र ने महर्षि दधिचि की हड्डियाँ प्राप्त कर उनका वज्र बनवाया था और उस वज्र से वृत्रासुर का वध किया था।

रामायण, महाभारत एवं अन्य पौराणिक साहित्यों में इन्द्र को अत्यधिक सोमरस पी कर मत्त रहने वाला, नृत्य-गीत और सुन्दरियों के संग विलासिता में आकण्ठ मग्न रहने वाला वृथाभिमानी के रूप में चित्रित किया गया है। इन कथाओं में इन्द्र की चारित्रिक दुर्बलताओं के अनेक प्रकार से उल्लेख हुए हैं। महाभारत के अनुसार, गौतम-पत्नी अहिल्या के रूप और यौवन पर मुग्ध इन्द्र ने छल से, वेश बदल कर उसका सतीत्व भंग कर दिया जिस कारण मुनि के शाप से ये सहस्र योनि वाले हो गये। रामावतार में स्वयंवर के समय राम के दर्शन से इनके भग नेत्रों में परिणत हुए और तब से ये सहस्राक्ष कहलाने लगे। वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है कि रावण के पुत्र मेघनाद ने इन्द्र को पराजित कर वन्दी बना लिया जिससे मुक्ति के लिए देवताओं को रावण को अमर होने का वरदान देना पड़ा। कृष्ण-कथा से भी इनके महत्व को कम करने के प्रमाण मिलते हैं।

एक कथा है कि इन्द्र ने पुलोमा को मार कर उसकी पुत्री (शची) से विवाह किया। ऐतरेय ब्राह्मण में इनकी पत्नी का नाम प्रसहा बताया गया है। साहित्य में इन्द्र के अनेक नामों का उल्लेख है --- देवराज, देवेन्द्र, महेन्द्र, शक्रधनु, वृत्रघ्न, ऋभुक्षु, अर्ह, दत्तेय, वज्रपाणि, मेघवाहन, पुरन्दर, देवपति, दिवस्पति, उलूक, स्वर्गपति, जिष्णु, मरुत्वान, उग्रधन्वा आदि।

आकाश और वृष्टि के प्रतीक इन्द्र के वास्तविक भौतिक आधार के विषय में विद्वानों के परस्पर भिन्न विचार हैं। कुछ विद्वान इन्द्र और वृत्र के युद्ध को एक ऐतिहासिक घटना मानते हैं। अन्य विद्वान वृत्र को हिम का प्रतीक और इन्द्र को सूर्य का प्रतीक मानते हैं। मिथिला में इन्द्र को वर्षा का देवता मान कर ग्रामीण खेतिहर स्त्रियाँ अनावृष्टि की स्थिति में परम्परागत गीत-नृत्य का आयोजन करती हैं। इस नृत्य में जट-जट्टिन को नायक-नायिका बना कर गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में इन्द्र और ब्राह्मण-देवता को प्रेमभरी चुहलबाजियों और गालियों से मनुहार किया जाता है। कहीं-कहीं इन्द्र-पूजा का भी आयोजन होता है।


हनुमान

चित्रगुप्त




इन्द्र

कामदेव

ऋग्वेद में इच्छा की उत्पत्ति का उल्लेख है। परवर्ती साहित्य में यह इच्छा या कामना ही प्रेम और सौन्दर्य के देवता कामदेव के रूप प्रसिद्ध हुई। अथर्ववेद के अनुसार, सृष्टि में सर्वप्रथम **'काम'** की उत्पत्ति हुई। हरिवंश पुराण में कामदेव को लक्ष्मी-पुत्र कहा गया है। कामदेव को आत्मभू और अज भी कहा गया है, जिससे अनुमान किया जाता है कि इनका जन्म बिना माता-पिता के हुआ।

पौराणिक ग्रन्थों में कामदेव की स्त्री को रति या रैवा कहा गया है। वसन्त कामदेव का सहयोगी है तथा कोकिल और शुक इनके वाहन हैं। इनकी ध्वजा में मकर का चिन्ह है, जिससे इनका नाम मकरकेतु, मकरकेतन या मकरध्वज पड़ा। कामदेव पाँच तरह के फूलों के बाण और धनुष धारण करने के कारण 'पंचवाण' भी कहलाते हैं। इन बाणों से आघात कर ये किसी के हृदय में काम-भावना का संचार करते हैं। कुछ विद्वान इन पाँच फूलों में लाल कमल, अशोक, चमेली,,नील कमल और आम्रमंजरी को शामिल करते हैं तो कुछ विद्वान पाटल, चम्पा, केवड़ा, कमल और आम्रमंजरी को। विश्वास है कि कामदेव इन पुष्प-बाणों से किसी के हृदय में उन्मादन, शोषण, तपन, स्तंभन और सम्मोहन की स्थिति पैदा कर देते हैं जिससे वह व्यक्ति कामातुर हो जाता है।

यहाँ चित्रित कामदेव का स्वरूप प्राचीन मिथिला चित्र का विस्मितप्राय रूप है, जिसका चित्रांकन अनिवार्यतः कोबरघर में उस तरफ की भित्ति पर किया जाता था, जहाँ वर-वधू की दृष्टि सोते-जागते उस पर पड़े। कामदेव के इस स्वरूप को **'पंचकाम'** कहते हैं। मिथिलाचित्र में हाथी को यौनसुख, शक्ति और मदमत्त जवानी का प्रतीक माना गया है। इस हस्ति में पौराणिक पंचकन्या — अहल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा और मन्दोदरी को समाया हुआ दिखाया जाता है, जिनका कौमार्य विवाह के बाद भी अखण्डित माना जाता है। मिथिलाचित्र में पंचकन्या अक्षत यौवना के प्रतीक हैं और **'पंचकाम'** धर्म, अर्थ, काम के समन्वित पद का प्रतीक। **'पंचकाम'** के अतिरिक्त मिथिलाचित्र की प्राचीन परम्परा में **''नवरस कामदेव''** का भी उल्लेख पाया जाता है। इस रूप में कामदेव को नौ स्त्रियों से निर्मित हथिनी पर सवार दिखाया जाता है। ये नौ स्त्रियाँ वस्तुतः शृंगारादि नौ रसों के प्रतीक हैं। इस दुर्लभ चित्र का अंकन इस लेखकद्वय द्वारा रचित **''मेघदूत''** (काव्य) के कवर पर उपलब्ध है।


कामदेव

कार्त्तिकेय

कार्तिकेय या स्कंद शिव-पार्वती के पुत्र और गणेश के अनुज हैं। इनके छः शिर हैं जिससे इनका एक नाम षडानन भी है। देवासुर संग्राम में ये देवताओं के सेनापति रहे हैं जिस कारण इनका एक नाम "कुमार" भी है। इनका वाहन मयूर है और ये धनुष-बाण धारण किये रहते हैं। दक्षिण भारत के हिन्दुओं के ये महत्वपूर्ण पूज्य देवता 'सुब्रमण्यम' हैं।



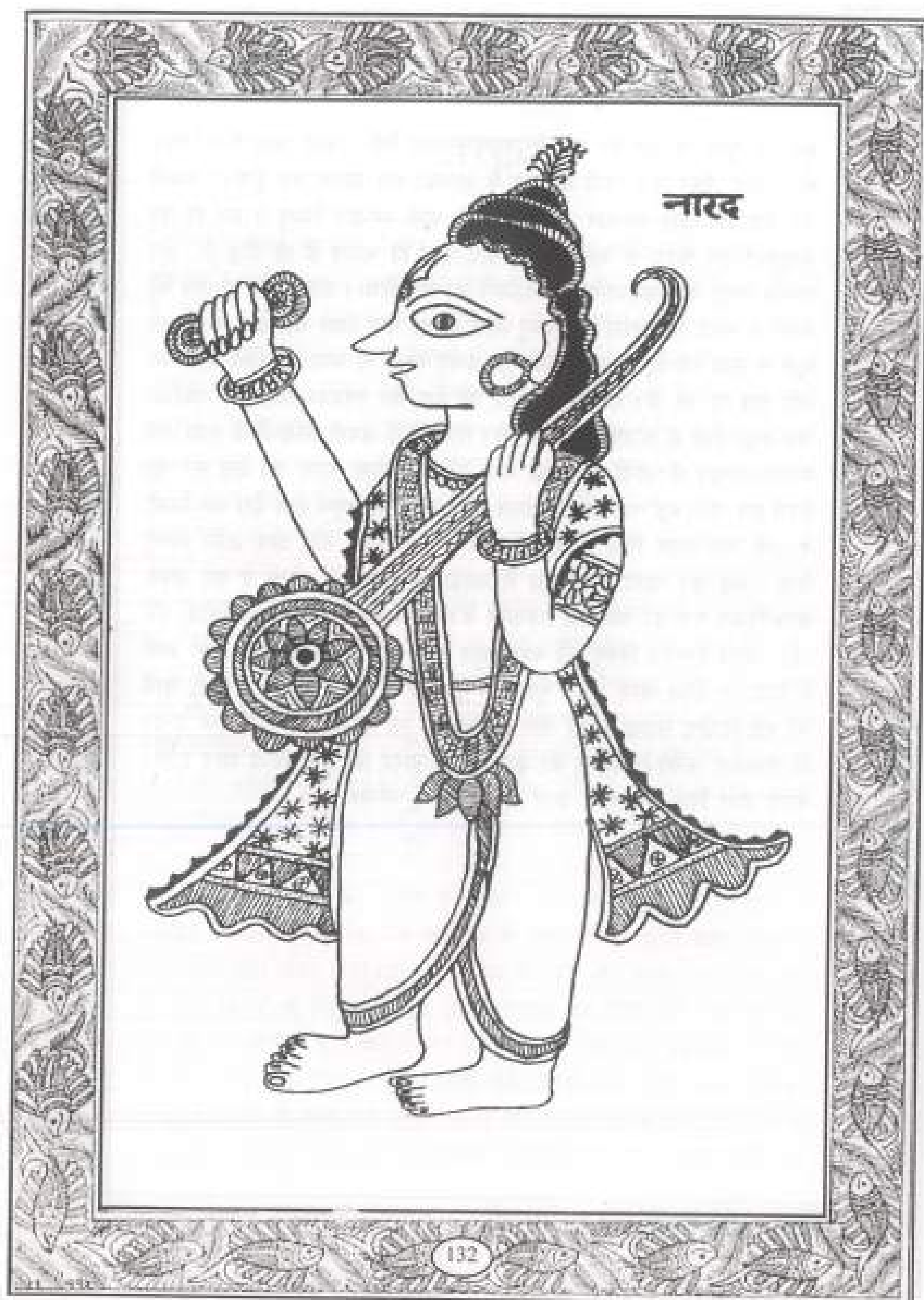
कार्त्तिकेय

नारद

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के मानस पुत्र, विष्णु के परम भक्त और भक्तिमार्ग के प्रवर्तक देवर्षि नारद की चर्चा प्रायः सभी पुराणों में किसी न किसी रूप में हुई है। देवर्षि नारद का व्यक्तित्व बहुआयामी है। इनका उल्लेख प्रायः संगीत, भजन, कलह, विद्वता, परोपकार, गूढ़ रहस्यों या षडयन्त्रों के उद्‌घाटक के रूप में हुआ है। ये देव, दानव, मानव, यक्ष, गन्धर्व आदि समस्त लोकों में निरन्तर घूमते रहते हैं। इनके एक हाथ में इनका प्रिय वाद्यन्त्र 'करताल' और कंधे से लटकती 'महती' नाम की वीणा रहती है जिस पर हरिनाम का गान करते हुए ये चौदहों भुवन में भ्रमणशील रहते हैं। सर्वत्र घूमते हुए नारद की दृष्टि संसार की अनेकानेक छोटी-बड़ी घटनाओं पर रहती है। एक निर्भीक पत्रकार की तरह किसी भी देव, दानव या मानव से सम्बंधित घटना या कृत्यों के सम्बंध में सीधा उन्हीं से प्रश्न पूछना और फिर उस घटना का सब जगह प्रकाशन करना नारद की प्रमुख दिनचर्या है। प्रायः इसी कारण लोक-कथाओं में इन्हें 'चुगलखोर' कहा गया है।

नारद परम विद्यानुरागी थे। समस्त विद्याओं के ज्ञाता होने की लालसा के कारण इनका जीवन एक छात्र की तरह ब्रह्मचारी का जीवन था। एक बार इन्हें अभिमान हो गया कि इन्होंने कामेच्छा पर विजय प्राप्त कर ली है। विष्णु ने उनके अहंकार को नष्ट करने के लिए एक योजना बनाई। उन्होंने अपनी मायाशक्ति से एक सुन्दर नगरी का निर्माण करवाया, उस नगरी की राजकुमारी के स्वयंवर का नाटक रचाया और नारद को उस राजकुमारी का भाग्य-लेख देख कर उसके माता-पिता को बताने को कहा। नारद ने अपने ज्योतिष-ज्ञान के आधार पर ज्ञात किया कि उस बालिका के साथ विवाह करने वाला त्रिभुवन का स्वामी और अमर होगा। इस भाग्यादेश को जान कर नारद उस राजकुमारी के साथ विवाह के लिए बेचैन हो उठे। अमरता का लोभ और स्त्री-सुख की कामना से व्याकुल नारद का समस्त ज्ञान-विज्ञान, तप और ब्रह्मचर्य तिरोहित हो गया। वह भागे-भागे विष्णु के पास गये, उनका रूप -गुण उधार माँगने। नारद ने विष्णु से कहा, ''हे प्रभु ! आप यदि अपना सुदर रूप कुछ दिन के लिए मुझे उधार दे दे तो मैं भी स्वयंवर में सम्मिलित होऊँ। राजकुमारी उस

रूप पर मुग्ध हो कर मेरे गले में जयमाल डाल देगी, उसके साथ मेरा विवाह हो जायगा, फिर कुछ दिनों के बाद मैं आपका रूप वापस कर दूँगा।'' भक्तों की अज्ञानता और अहंकार का नाश करने वाले भगवान विष्णु ने मन ही मन मुस्कुराते हुए नारद से कहा कि वे यदि ऐसा ही चाहते हैं तो ठीक है, और उन्होंने नारद को स्वयंवर-स्थल पर जाने को कह दिया। लीलाधारी भगवान की माया से नारद का शरीर तो विष्णु जैसा ही हो गया जिसे देख-देख कर नारद फूले न समा रहे थे, किन्तु उनका मुँह बन्दर वाला हो गया था जिसे वह स्वयं नहीं देख पा रहे थे। बन्दरमुख नारद को देख कर स्वयंवर-स्थल पर एकत्रित जन-समूह हँसी से लोटपोट हो रहा था। राजकुमारी अपनी सखियों के साथ जब स्वयंवर-मण्डप में आयी तो सबसे आगे बैठे 'बानरमुख नारद' को देख कर मुँह फेरते हुए आगे बढ़ गयी। काम-विह्वल नारद की निराशापूर्ण दशा देख कर किसी ने उन्हें एक दर्पण दिया। दर्पण में अपना 'बन्दरमुख' और शेष शरीर विष्णु जैसा देख कर नारद को समझ में आया कि विष्णु ने धोखा दे कर उनके काम-विह्वल मन, को और भी तड़पाया है। क्रोधाक्रोष में नारद विष्णुलोक गये और अपने इष्टदेव विष्णु को बहुत कुछ भला-बुरा सुनाने के बाद उन्हें शाप दे दिया –''जिस तरह तुमने मुझे स्त्री-सुख से वंचित किया है, वैसे ही तुम्हें भी स्त्री-वियोग सहना पड़ेगा और विपत्ति के उस कठिन समय में तुम्हें बन्दर ही सहायता करेंगे।'' विष्णु की कृपा से ही नारद को पुनः दिव्य ज्ञान हुआ। नारद द्वारा दिए गये दोनों शाप रामावतार में फलित हुए।


नारद

अनुभाग – 3
शक्ति

महान शिव-भक्त शंकराचार्य ने भगवती आद्याशक्ति की प्रार्थना करते हुए कहा है कि स्वयं महादेवजी के पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है; बूढ़े बैल पर सवारी करते हैं; भाँग-धतूरा खाते हैं; कभी-कभी विष भी पी जाते हैं; नंग-धड़ंग दिगम्बर वेश में रहते हैं; मशान में विचरते रहते हैं; विषधर सर्पों को अपने अंगों में लिपटाये रहते हैं और भस्म से अपने शरीर को सजाये रखते हैं। स्वयं उनका तो यह हाल है, जो जगजाहिर है। फिर उनके घर में इतनी समृद्धि कहाँ से आयी (जिससे वह संसार का भरण-पोषण करते हैं और औढरदानी कहलाते हैं) ? यह सब, हे माता (शक्ति), सब तुम्हारा ही प्रभाव है, तुम्हारी ही महिमा है।''

'वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं,
मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणविधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैव स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा।।''

भगवती भगवान की शक्ति हैं; वही प्रकृति हैं; वही ईश्वर की प्रेरणा हैं और उससे सब काम करवाने वाली हैं। शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति या भगवान और भगवती में कोई अन्तर नहीं है। वही प्रकृति अर्थात प्रभु की शक्ति है जो समस्त चराचर को उत्पन्न करती है और जिसमें यह समस्त संसार समाहित रहता है– 'तोहें जनमि पुनि तोहें समाओल, सागर लहरि समाना।' (विद्यापति) । वस्तुतः यह वह शक्ति है जो इस विश्व का नियमन और संचालन करती है। यह प्रकृति ही है जिसे ईश्वर की अर्द्धांगिनी कहा गया है। धर्मशास्त्रों में ईश्वर को माता और पिता दोनों कहा गया है –''त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।''

गीता में भगवान कहते हैं कि अज (जन्मरहित) होते हुए भी, निर्विकारस्वरूप होते हुए भी और समस्त भूतों के ईश्वर होते हुए भी वह अपनी प्रकृति के आधार पर स्थित हो कर, संसार से अत्याचारियों के विनाश और सद्व्यवस्था के विकास के लिए, अपनी माया के बल से बार-बार जन्म लिया करते हैं। वस्तुतः अपनी जिस शक्ति के बल से वह जन्म लेते हैं, वही माया है।

मायाशक्ति त्रिगुणात्मक है जिससे ईश्वर सृष्टि, पालन और संहार के महान कर्मों का सम्पादन करते हैं और सनातन धर्म-परम्परा में त्रिदेव की उपाधि धारण करते हैं। एक ही परमात्मा शक्तिरहित होने की स्थिति में निर्गुण, निराकार, निष्क्रिय, निर्लिप्त होता है और वही पुरुष (ब्रह्म) अपनी त्रिशक्त्यात्मक मायाशक्ति से शंबलित हो कर जगत-नियन्ता हो जाता है। ये तीन शक्तियाँ हैं — **महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती।**

एक ही महाशक्ति भिन्न-भिन्न नामों एवं रूपों में प्रकट हो कर अपने भिन्न-भिन्न कार्यों का सम्पादन करती है। वही शक्ति कभी सरस्वती के रूप में रचनात्मक कार्य करती है, समाजसेवा, परोपकार, शान्ति-स्थापना और सामूहिक कल्याण के कार्य करवाती है और विश्व-प्रसूता के रूप में माता कहलाती है तो कभी दया, क्षमा, करुणा और समाज में विकासात्मक क्रियाकलाप से जगत-पिता कहलाती है। इसी तरह, धन-पद और बल के अभिमान से चूड़ अत्याचारियों और आसुरी प्रवृत्ति से समाज का अहित करनेवालों को अन्ततः उचित दण्ड दे कर काली नाम को सार्थक करती है। वही अचिन्त्य विराट शक्ति एक ओर भगवान और दूसरी ओर भगवती नाम से विख्यात होती है।

यह आदिशक्ति केवल ईश्वर को ही विश्वकार्य की प्रेरणा नहीं देती है अपितु प्रत्येक मनुष्य के हृदय में अच्छे-बुरे का भाव उत्पन्न करके उसे तद्रूप कार्य में प्रेरित करती है। दुर्भाग्यवश आज समाज में स्वार्थ के लिए लोभ, प्रपंच, भ्रष्टाचार, हिंसा और व्यभिचार जैसी आसुरी प्रवृति के लोगों का ही प्रावल्य बढ़ता जा रहा है।

महाकाली

'काल' कहते हैं समय को। हम प्रकृति में नित्य कुछ जनमते, जन्मे हुए को बढ़ते, फलते-फूलते, पकते-झड़ते या नष्ट होते देखते हैं। यह उत्पत्ति, वृद्धि और विनाश की क्रिया कौन करता है? जो सभी सजीव और निर्जीव पदार्थों की उत्पत्ति, वृद्धि और विनाश करता है, वही काल है। कुछ दार्शनिक आकाशतत्व से काल की उत्पत्ति मानते हैं जबकि कुछ दार्शनिक 'काल' को नित्य और अखण्डरूप से विद्यमान मानते हैं। काल को रात-दिन, सप्ताह-मास, वर्ष-शताब्दी या घड़ी-प्रहर में बाँट कर देखना तो मनुष्य की कल्पना है, किन्तु काल अखण्ड है। काल के गर्भ से सारे भूत पदार्थों की उत्पत्ति होती है तथा काल के गर्भ में ही सबका लय हो जाता है। कालशक्ति को अतिक्रमित करने का सामर्थ्य किसी प्राणी में नहीं है। काल का दूसरा नाम रुद्र है; शिव ही महाकाल है। पुराणों में काल को 'सर्वान्तकृत यम' भी कहा गया है। संहार की भैरवी मूर्ति ही काल का रूप है। ''काली'' संहार की मूर्ति है, इसी कारण इसके साथ सर्वान्तकारी काल का घनिष्ठ सम्बंध है। काली की भयंकर विकराल मूर्ति तथा महाकाल की रुद्रमूर्ति दोनों ही महाप्रलय की द्योतक हैं, और जो काल के ऊपर प्रतिष्ठित है, वही काली है।

इस संसार में हम हर तरफ शक्ति के रहस्यमय खेल देखते रहते हैं; आकाश, वायु, ग्रह, नक्षत्रादि सभी शक्ति के अद्भुत खेल में संलग्न हैं। जैसे एक ही समुद्र में अनगिनत लहरें उठती-गिरती रहती हैं अथवा जिस प्रकार एक ही सूर्य से निकलने वाली किरणें समस्त संसार को प्रकाशित करती हैं, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड की अनन्त शक्तियाँ काली से निसृत हुई हैं और वही समस्त शक्तियों का आश्रय है। माया, दिक् और काल सभी उसी महाकाली की शक्तियाँ हैं।

महाशक्ति काली के समक्ष काल भी तुच्छ और निष्क्रिय है। इसी तथ्य को उजागर करने के लिए मूर्तिकला और चित्रकलाओं में महाकाल को काली के चरणों के नीचे शव की तरह निश्चेष्ट, निपतित दिखाया जाता है। चेतनारहित अथवा शक्तिशून्य जीव और जड़ पदार्थ में कोई भेद नहीं रह जाता है। प्रलयकाल में महामाया जब विश्व की समस्त शक्तियों को अपने भीतर संगृहित करके अव्यक्त तत्व में लीन हो जाती है तब शिव भी शव हो जाता है। काली की मूर्ति इस संहारतत्व का ही प्रतीक है।


महाकाली

छिन्नमस्ता

इस संसार के निर्माण और ध्वंश की प्रक्रिया को समझने के लिए तान्त्रिक ग्रन्थों में 'दश महाविद्या' का उल्लेख किया गया है, जिसके अन्तर्गत काली, तारा, त्रिपुरसुन्दरी, भुवनेश्वरी, त्रिपुर भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमलात्मिका शक्तियों का अध्ययन किया जाता है। 'छिन्नमस्ता' दशमहाविद्या की छठी शक्ति है। चित्र और मूर्ति में छिन्नमस्ता को रति और कामदेव की मिथुनरत जोड़ी पर खड़ी, निर्वस्त्र, शीर्षविहीन और दो उर्धवाहु वाली दिखाया जाता है। उसके एक हाथ में उसका अपना ही कटा हुआ शिर होता है और दूसरे हाथ में खड्ग या कैंची होती है। शिररहित गर्दन से रक्त की तीन धाराएँ निकलती रहती हैं जिनमें से बीच की धारा का पान उसका अपना ही कटा हुआ शिर करता है और दो धाराओं का पान देवी के बाँए-दाहिने खड़ी उसकी योगिनियाँ वर्णिनी और डाकिनी करती हैं।

छिन्नमस्ता तान्त्रिक प्रतीकों द्वारा सृष्टि-क्रिया की अभिव्यक्ति है। तान्त्रिक ग्रन्थों में इसके गूढ़ रहस्यों की व्याख्या की गई है। इन ग्रन्थों में इसे 'विद्युत रेखा', आद्य प्रकाश की रेखा कहा गया है। प्रलयकाल की गहन कालिमामय अंधकार के बीच जब पहली बार प्रकाश की रेखा छिटकी, प्रकाश और ध्वनि की अन्तर्प्रतिक्रिया से परमेश्वर को सृष्टि की प्रेरणा हुई, तान्त्रिक साधक उसी महाशक्ति को छिन्नमस्ता के नाम से जानते हैं। प्रकाश और ध्वनि की अन्तर्प्रतिक्रिया इतनी भयानक और प्रचण्ड होती है कि 'सृजन' का सम्बंध 'सर्जक' से एक झटके में विच्छिन्न हो जाता है। इसी कारण छिन्नमस्ता 'सिरकटे' रूप में चित्रित की जाती है। प्रकृति में हम बादलों के बीच प्रचण्ड बिजली को कड़कड़ाते और छिटकते देखते हैं। तान्त्रिकों के मत में, प्रकाश और ध्वनि का यह मिलन ही छिन्नमस्ता है।

मिथिला लोकचित्र में रहस्य-मूर्ति छिन्नमस्ता जीवन के स्वतन्त्र अस्तित्व की अभिव्यक्ति के रूप में देखी जाती है। इसका कथासूत्र यह है कि परमेश्वर जितना प्रसन्न 'सृष्टि' करने के बाद होता है, उससे भी अधिक आनन्द उसे तब मिलता है जब सृष्ट पदार्थ का सम्बंध उससे कट जाय। सृष्टिकर्त्ता से इस

विच्छेदन के बिना सृष्टि का विकास सम्भव नहीं है। इस रहस्य को इस प्रकार समझा जा सकता है कि मनुष्य या किसी प्राणी के अपनी माँ के गर्भ में अंकुरण से भी पूर्व, नर और मादा के बीच भावों का संकर्षण होता है। यह कुछ वैसा ही है जैसे प्रकाश और ध्वनि के संकर्षण से आकाश में बिजली छिटकती है। नर और मादा के बीच भावों की अन्तर्प्रतिक्रिया से दोनों सम्भोग के लिए प्रेरित होते हैं। यही अन्तर्प्रतिक्रिया छिन्नमस्ता की उपस्थिति है, जिसकी प्रेरणा से नर-मादा का मिलन होता है और फिर सूक्ष्मदेह के रूप में प्राणी का अपनी माँ के गर्भ में अवतरण होता है। माता के गर्भ में पल-बढ़ रहा शिशु काल-विशेष में, एक झटके के साथ, योनिमार्ग से बाहर आता है। झटके की यह शक्ति भी छिन्नमस्ता ही है। अपने रक्त-मांश और प्राणों से पोषण करने वाली माता का वह शिशु गर्भ से बाहर आने के बाद भी तब तक उसकी देह का भाग बना रहता है, जब तक वह अपनी माँ के साथ नाभिनाल के द्वारा जुड़ा रहता है। तर्क के आधार पर, माता और शिशु के बीच का नाभिनाल वैसा ही होता है जैसा कि किसी के धड़ और शिर के बीच में गर्दन। माता और शिशु के बीच के नाभिनाल को जब तक काटा नहीं जाता तब तक नवजात शिशु स्वतन्त्र अस्तित्व में नहीं आ सकता। इसका प्रतीकात्मक अर्थ यह हुआ कि अपने शिशु के जीवन के लिए माँ अपनी गर्दन काटती है ताकि जीवरूप में वह शिशु स्वतन्त्र अस्तित्व में आ सके। नाभिनाल कटने के बाद स्वतन्त्र अस्तित्व में आये प्राणी को माँ अपना दूध पिला कर उसे जीवन देती है। रहस्यमूर्ति 'छिन्नमस्ता' का यही प्रतीकार्थ है।

छिन्नमस्ता परमेश्वर की दुर्दमनीय प्रहारक शक्ति है। भयानक मूर्ति काली और छिन्नमस्ता में किंचित अन्तर है। काली को चण्डी कहा गया है और छिन्नमस्ता को प्रचण्ड चण्डी। काली सृष्टि की निरन्तरता के लिए उसका संहार करती है और प्राणशक्ति कहलाती है जबकि **प्रचण्डचण्डी** सृष्टिकर्त्ता से 'सृष्टि' को विच्छिन्न करती है और 'वियुतशक्ति' कहलाती है। काली का स्थान जीवों के हृदय में होता है और सशक्त मनोभावों तथा आशु-क्रिया की प्रतिनिधि शक्ति है जबकि छिन्नमस्ता का स्थान मस्तिष्क के आज्ञाकेन्द्र में होता है और वह इच्छा एवं कल्पना की प्रतिनिधि शक्ति है।

तान्त्रिक प्रतीकों से बने छिन्नमस्ता के चित्र में आप देखते हैं कि उसके

शीर्ष-विहीन धड़ से रक्त की तीन धारा निकलती है जिसकी बीच वाली मोटी धारा का पान उसका अपना ही कटा हुआ शिर करता है, जबकि दो अन्य धाराओं का पान देवी के दाहिने-बाँए में खड़ी दो योगिनियाँ करती हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, छिन्नमस्ता का स्थान दोनो भौंहों के मध्य आज्ञाकेन्द्र में होता है किन्तु उसकी क्रियाशीलता मेरुदण्ड – रीढ़ में स्थित सुषुम्ना की मोटी नाड़ी में निरन्तर बनी रहती है जहाँ वह जैव विद्युत प्रवाह के रूप में रक्त के साथ नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे करती रहती है। इसी प्रकार सुषुम्ना के दाहिने और बाँयी नाड़ियाँ इड़ा और पिंगला या वर्णिनी और डाकिनी शक्तियाँ नाड़ियों में रक्त के साथ विद्युत प्रवाह के रूप में ऊपर-नीचे करती रहती है जिससे प्राणी के शरीर में शक्ति का संचार होता रहता है। इसी रहस्यपूर्ण जैविक क्रिया को तान्त्रिक पद्धति में समझाने के लिए छिन्नमस्ता और उसकी दो योगिनियों के द्वारा रक्त की तीन धाराओं का पान करते हुए दिखलाया जाता है।




छिन्नमस्ता

महालक्ष्मी

लक्ष्मी धनदेवी हैं। इनका सम्बंध धन और सुख-सम्पदा से है। यह दो बहन हैं। दूसरी का नाम अलक्ष्मी है। लक्ष्मी अभिमानी है और अलक्ष्मी जिद्दी। लक्ष्मी जिस पर प्रसन्न होती है, उसे धन-धान्य में बोर देती है और अलक्ष्मी जिसे पकड़ लेती है, उसे तबाह कर देती है। मुद्रा, अन्न और सुन्दरता लक्ष्मी की शक्ति है और क्रोध, आलस्य, दुर्व्यसन अलक्ष्मी के अस्त्र हैं। संसार का हर आदमी इन दोनो बहन में से किसी न किसी के हिस्से का असामी है।

भारत के कुछ भागों में लक्ष्मी और अलक्ष्मी दोनो पुजी जाती हैं। मिथिला चित्र में 'अलक्ष्मी' के प्रवेश की मनाही है। अपने घरों में दरिद्रता की देवी अलक्ष्मी के प्रवेश को रोकने के लिए मिथिला की गुणवती चित्रकार स्त्रियाँ पिसे हुए चावल के श्वेत रंग से भूमि पर विस्तृत 'लक्ष्मी अरिपन' बना कर उसमें यत्र-तत्र सिन्दूर के बिन्दु लगाती हैं। सौभाग्य और विजय के प्रतीक सिन्दूर को अलक्ष्मी सहन नहीं कर सकती, इसलिए वह वहाँ नहीं जाती, जहाँ सिन्दूर लगे रहते हैं।

यजुर्वेद में 'श्री' तथा 'लक्ष्मी' विष्णु की दो पत्नियाँ मानी गयी हैं। अथर्ववेद में श्री धन-सम्पत्ति, सौभाग्य आदि की द्योतक है। श्रीसुक्त में श्री तथा लक्ष्मी एक ही देवी को कहा गया है जो सुवर्ण और रजत की माला पहनती है, हिरण्य अथवा पद्म वर्ण वाली है, पद्म पर स्थित है और हाथ में बेल का फल धारण करती है। तैत्तिरीय उपनिषद में ये वस्त्र, धन, भोजन आदि की प्रदात्री देवी हैं। महाभारत में लक्ष्मी की समुद्र-मन्थन से उत्पत्ति और मगर पर आसीन कुबेर की स्त्री के रूप में उल्लेख है। अग्निपुराण में लक्ष्मी को प्रकृति तथा नारायण को पुरुष कहा गया है, जिनके संयोग से इस संसार की सृष्टि होती है। विष्णुपुराण में 'श्री' विष्णु की पत्नी तथा समुद्र मन्थन से उत्पन्न कमलालया कही गयी है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में 'लक्ष्मी' की मूर्ति का विधान करते हुए कहा गया है कि जब विष्णु के साथ लक्ष्मी की मूर्ति बनायी जाय तो लक्ष्मी को दो भुजाओं वाली बनाना चाहिए, किन्तु यदि पृथक दिखलाना हो तो उन्हें चतुर्भुजी बनाना चाहिए। लक्ष्मी का रूप सुन्दर बनाना चाहिए और उनके अंगों को उत्तम आभूषणों से सजाना चाहिए। चतुर्भुजी लक्ष्मी को अष्टदल कमल के आसन पर प्रदर्शित करना चाहिए। उनके नीचे के दाहिने हाथ में कमल, नीचे के बाँए हाथ में अमृतघट,

ऊपर के एक हाथ में श्रीफल (बेल) और दूसरे हाथ में शंख तथा दो हाथियों द्वारा सूड़ों से घट लिए हुए देवी को स्नान कराते दिखाना चाहिए।

लक्ष्मी



दुर्गा

हिन्दुओं की प्रख्यात देवी दुर्गा आद्याशक्ति के रूप में पूजी जाती हैं। 'दुर्ग' नामक दैत्य का संहार करने के कारण इनका नाम दुर्गा पड़ा। मार्कण्डेय पुराण के 'देवी महात्म्य' या 'दुर्गा सप्तशती' के अनुसार, दुर्गा के मुख्यतया तीन रूप हैं— महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती, जिनमें क्रमशः तमोगुण, रजोगुण तथा सत्वगुण का उत्कर्ष माना जाता है।

दुर्गा सप्तशती के दूसरे अध्याय में कथा है कि असुरों के स्वामी महिषासुर और देवताओं के नायक इन्द्र के नेतृत्व में देव और असुरों के बीच सौ वर्षों तक भीषण युद्ध होता रहा। अन्ततः उस युद्ध में देवताओं की पराजय हुई और महिषासुर स्वर्ग के राज्य का स्वामी बन गया। अपनी समस्त सम्पदा और सत्ता से विहीन इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, वरुण आदि देवता दरिद्र याचक की तरह निराश्रित हो भटकने लगे। ऐसी ही स्थिति में, एक दिन ब्रह्मा की अगुआई में इन्द्रादि सभी देवता विष्णु और शिव के पास गये और उन्हें अपनी विपदा सुनाई। देवताओं की प्रार्थना और उनकी विपत्ति सुन कर विष्णु और शिव असुरराज के प्रति क्रोधाग्नि से दहक उठे। उस समय एक अपूर्व दैवी चमत्कार हुआ। शिव, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि समस्त देवताओं के शरीर से पृथक-पृथक अद्भुत तेज निकला और पल भर में सभी देवों का तेज आपस में मिल कर एकाकार हो गया। दहकते हुए उस पर्वताकार तेजपुंज से सभी दिशाएँ हजार-हजार सूर्य की रश्मियों की तरह प्रकाशमान हो उठीं। धीरे-धीरे वह तेजराशि नारी-स्वरूप में बदलने लगी। देवताओं ने देखा, शिव के शरीर से जो तेज निकला, उससे उस देवी का मुख प्रकट हुआ; यमराज के तेज से उसके सिर में बाल निकल आये; विष्णु के तेज से उसकी भुजाएँ उत्पन्न हुईं; चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तनों का विकास हुआ; इन्द्र के तेज से शरीर का मध्य भाग प्रकट हुआ; वरुण के तेज से जंघा तथा पिण्डली और पृथ्वी के तेज से नितम्ब भाग प्रकट हुआ; ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण; सूर्य के तेज से पैरों की अंगुलियाँ; वसुओं के तेज से हाथों की अंगुलियाँ; कुबेर के तेज से नासिका; प्रजापति के तेज से देवी के दाँत;

अग्नि के तेज से तीनो नेत्र; वायु के तेज से कान और संध्या के तेज से भौंहें प्रकट हुए।

समस्त देवताओं की तेजराशि से आविर्भूत जाज्वल्यमान उस देवी को देख कर सभी देवादि-मुनिश्रेष्ठ बहुत प्रसन्न हुए। देवाधिदेव महादेव ने अपने अस्त्रों में से एक शूल उस देवी को प्रदान किया। इसके पश्चात सभी देवों ने अपने-अपने दिव्य अस्त्र शक्तिरूपा देवी को अर्पित किए। विष्णु ने अपने चक्र से एक और चक्र का निर्माण कर देवी को अर्पित किया, वरुण ने शंख और पाश प्रदान किया, अग्नि ने शक्ति अर्पित की, वायुदेव ने अपने धनुष और दिव्य बाणो से पूर्ण दो तरकस प्रदान किए, सहस्राक्ष इन्द्र ने वज्र और ऐरावत हाथी से उतार कर एक घण्टा अर्पित किया, यमराज ने कालदण्ड, प्रजापति ने स्फटिक माला, ब्रह्मा ने कमण्डलु और विश्वकर्मा ने उन्हें फरसा प्रदान किया। अनेक दिव्य अस्त्रों से सज्जित देवी के समस्त रोम-कूपों में सूर्य ने अपनी किरणों का तेज भर दिया और महाकाल ने उन्हें अपनी द्युतिमान ढाल और तलवार प्रदान किया। इसके पश्चात देवताओं ने देवी को अनुपम आभूषण अर्पित किए। रत्नों के अनन्त भण्डार के स्वामी समुद्र ने देवी की सज्जा के लिए उज्ज्वल हार, दिव्य वस्त्र, चूड़ामणि, दो कुण्डल, कड़े, अर्धचन्द्र, बाहुओं की सज्जा के लिए केयूर, दोनो चरणो के लिए नूपुर, गले की हँसली, रत्नों की अंगूठियाँ और कभी न कुम्हलाने वाले कमल प्रदान किए। कुबेर ने मधु (सुरा) से भरा पानपात्र और हिमालय ने देवी की सवारी के लिए सिंह प्रदान किया।

अनेक दिव्य अस्त्रों और आभूषणो से सज्जित देवी भयंकर अट्टहास करती हुई उस ओर बढ़ी जिधर दानवराज महिषासुर अपने महावीर सेनापतियों के साथ युद्ध के लिए अड़ा हुआ था। जगदम्बा दुर्गा ने कोटि-कोटि असुर वीरों को अपने भीषण अस्त्रों के प्रहार से कुछ ही समय में काल-कवलित कर दिया। इस प्रकार अत्याचारी असुरों का सर्वनाश हुआ और पृथ्वी सहित स्वर्ग लोक में दैवी नियमों के अनुकूल व्यवस्था पुनः स्थापित हुई।


दुर्गा

महासरस्वती

''ऐमम्बितमे नदीतमे देवीतमे सरस्वती।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।।''

''मातृगणों मे श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ, देवियों में श्रेष्ठ महासरस्वति ! अभाव में हम संकुचित अर्थात हीन हो गये हैं। अतएव हमें हे माता ! प्रशस्ति प्रदान करो।''

इस श्लोक में सरस्वती को अम्बितमा, नदीतमा तथा देवीतमा कहा गया है। अम्बा शब्द का अर्थ होता है माता। अम्बितमा का अर्थ होता है सभी मातृका शक्तियों में श्रेष्ठ। जो अपने शिशुओं की रक्षा करती है और पोषण करती है वही माता कहलाती है। मनुष्य के जीवन में ज्ञान से बड़ा रक्षक कोई नहीं है। ज्ञान जीवन है और अज्ञान ही नाश है। अर्थात ज्ञानरूपी बल प्रदान करने वाली माता सरस्वती हैं।

नदीतमा -- नदियों में श्रेष्ठ। सरस्वती नदी प्रयाग में गंगा और यमुना के साथ मिलकर त्रिवेणी - संगम बनाती है। नदीरूपा सरस्वती का आध्यात्मिक भाव सुषम्ना नाड़ी है, जो इड़ा और पिंगला के मध्य भाग में अवस्थान करती है तथा मूलाधार में दोनो के साथ युक्त होती है। यह आध्यात्मिक त्रिवेणी है।

देवितमे -- दिव् धातु से बना है देवी। दिव् धातु का अर्थ होता है ज्योति, प्रकाश। अन्धकार का नाश करके आलोक प्रदान करने वाली शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ सरस्वती देवीतमा हैं।

पौराणिक परम्परा में सरस्वती को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की शक्ति कहा गया है। वह ब्रह्मा की पुत्री भी हैं और स्त्री भी। महाभारत में दक्ष-कन्या के रूप में सरस्वती का उल्लेख है। एक लोककथा के अनुसार, प्रारम्भ में लक्ष्मी के साथ सरस्वती भी विष्णु-पत्नी थी। लेकिन सौतिया डाह के कारण दोनो बराबर लड़ती रहती थी। दोनो के कलह से विष्णुलोक अशांत हो गया। अन्त में एक दिन खीज कर विष्णु ने ब्रह्मा को सरस्वती दान कर दिया। तब से ज्ञान की देवी सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी बन गई। वसन्त पंचमी के दिन सरस्वती की विशेष पूजा-अर्चना होती है। गाँवों में इसी दिन से लोग होली के गीत गाना प्रारम्भ करते हैं। वसन्त प्रचमी को श्रीपंचमी भी कहा जाता है।

सरस्वती



नयना योगिनि

मिथिला चित्र का "कोबर" वस्तुतः एक जटिल तान्त्रिक रचना है जिसमें चौसठ योगिनियों का वास कहा गया है। इन सभी योगिनियों में 'कामाक्षी' अर्थात प्रेम-नयन वाली योगिनी, सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं जिसे लोकभाषा में **"नयना योगिनी"** कहा जाता है। इस योगिनी का लौकिक वास-स्थान कामरूप- कामाख्या (असम) में बताया जाता है, किन्तु यह योगिनी सदैव पृथ्वी पर भ्रमणशील रहती है। कोबरघर के समस्त अवयव, चित्रादि और नव-विवाहित वर-वधू की किसी तान्त्रिक मारक शक्ति से रक्षा का भार इन्हीं के ऊपर होता है। कोबरघर के चारों कोण में चित्ररूप में इसकी उपस्थिति होती है। यह देवी घूँघट से अपना आधा चेहरा और एक आँख ढके रखती है जिसके माथे पर बाँस की बनी एक डलिया और एक हाथ में बाँस का बना पंखा रहता है। एकअक्षी, सजग और खड़ी यह योगिनी कोबरघर की केलि-प्रसन्नता और वर-वधू के सौभाग्य की संरक्षिका कही गई है।

नयना योगिनि




नयना योगिनि

सीता - कथा

सीता का अर्थ है, "हल के फाल से खींची हुई रेखा।" कहते हैं, प्राचीन मिथिला देश में एक बार घोर अकाल पड़ा। वर्षा का कोई अता-पता नहीं था। नदी-पोखर सूख कर मैदान बन गए। चारों तरफ जल के लिए हहाकार मचा था। राजा ने किसानों को बुलाया। पण्डितों की सभा की। ग्रह-नक्षत्रों की इच्छा जानने वालों ने बताया, राजा यदि हल चलावें तो वर्षा अवश्य होगी।

पण्डित-ज्योतिषियों की राय मान कर जुताई की तैयारी हुई, पुष्टकाय बैल हल में जुत गए और ब्रह्मविद्या के धनी राजा जनक हल चलाने लगे। बिन पानी की सूखी मिट्टी, खेत में पड़ी दराड़ें जीर्ण गुदड़ी की तरह विदीर्ण थीं। चलते-चलते हल का फाल किसी दराड़ में फँस गया। लोग दौड़े। झाँक कर देखा। फाल किसी कड़ी चीज में लग कर अँटक गया था। मिट्टी खोदने पर जो निकला, सो देख कर लोग अचम्भित रह गए। एक बड़ा सा पात्र और उसमें शांत, मुस्कुराती एक कन्या। राजा ने उसे प्रकृति का वरदान समझा और फूल सी नन्हीं उस बच्ची को अपनी छाती से लगा लिया। जनकजी के कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने सिर नवा कर धरती को प्रणाम किया और कन्या को अपनी बेटी मान कर घर ले आए। हल के फाल से उपजी उस कन्या को सभी लोग सीता कहने लगे।

सीता के जन्म की कई कथाएँ चर्चित हैं। 'अद्भुत रामायण' में वर्णन है कि कठिन तपस्या करके रावण ने ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया और कई तरह के वरदान पा कर क्रूर और अत्याचारी हो गया। वह दण्डक वन के ऋषियों के शरीर में वाण चुभो-चुभो कर कलसे में उनका रक्त जमा करने लगा। एक दिन रावण वह कलस अपनी स्त्री मन्दोदरी को रखने के लिए दिया और हिदायत दे दी कि उस कलसे का रुधिर कोई पी नहीं ले। मन्दोदरी रावण के कुकृत्यों से बहुत दुःखी रहा करती थी। एक दिन उसने कलसे का तीक्ष्ण रुधिर पी कर प्राणान्त करने की ठान ली। उसने ऋषियों के शरीर से निकाल कर जमा किया रक्त पी लिया। दैवी चमत्कार ऐसा हुआ कि वह गर्भवती हो गई। कुछ समय बाद उसने अपना गर्भ निकलवा कर एक बड़े पात्र में रखा, पुष्पक विमान पर

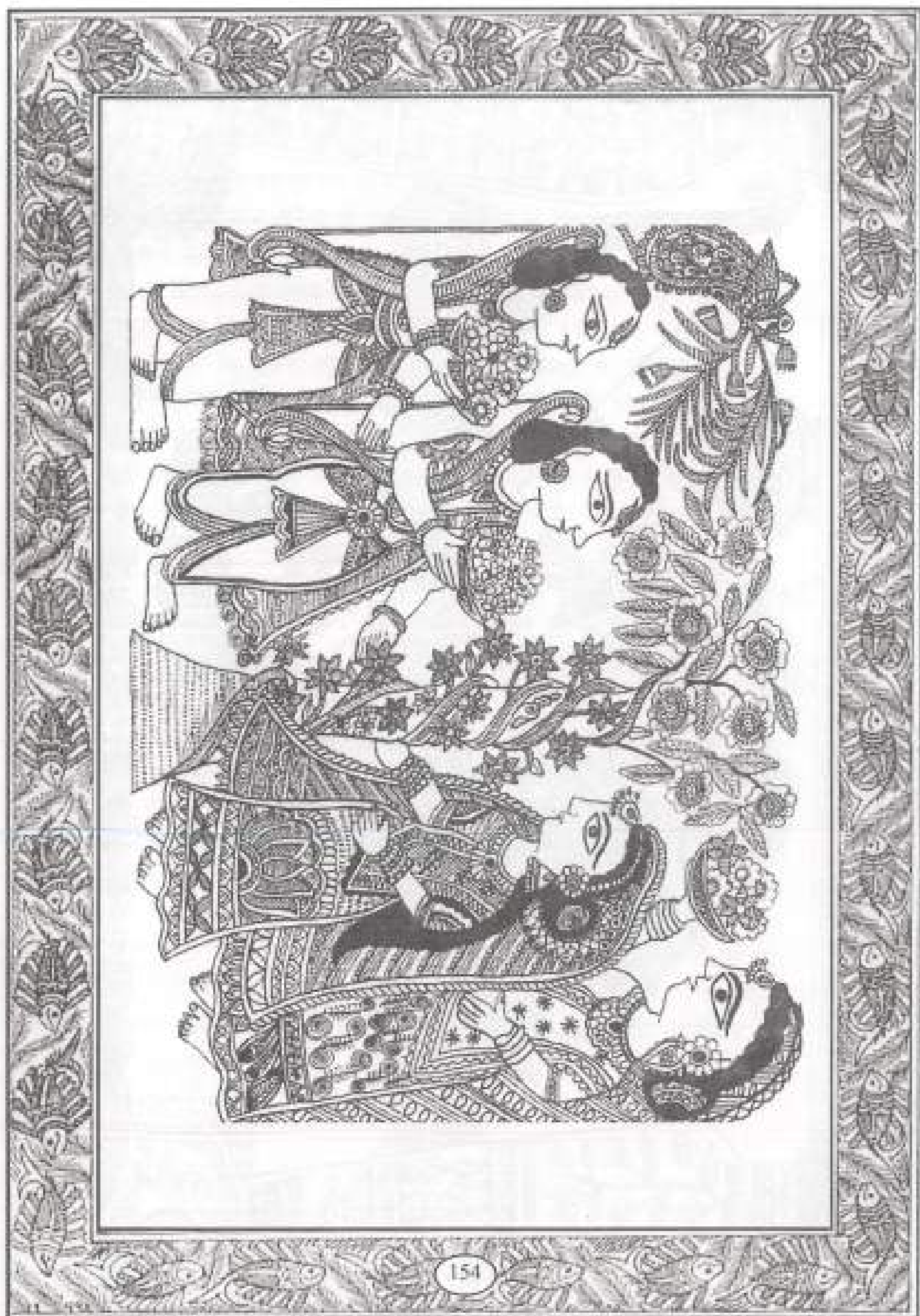


चढ़ कर मिथिला आई और गर्भपात्र को एक खेत में गड़वा दिया। समय आने पर वही शिशु जनक को हल जोतते समय प्राप्त हुआ जो सीता कहलायी। सीरध्वज जनक और माता सुनैना के वात्सल्य की छाँव में पलती हुई सीता यथा समय सयानी हुई।

सीरध्वज के पूर्वज को शिवजी की कृपा से, धरोहर के रूप में एक विशाल शिव-धनुष मिला था, जो उनके पूजा-गृह में रखा हुआ था। वह धनुष इतना विशाल था कि सैकड़ों लोग मिल कर भी उसे सहजता से नहीं उठा सकते थे। इसलिए उस स्थान की सफाई-लिपाई भी नहीं हो पाती थी। एक दिन जनक जी ने देखा, सीता जी बाँए हाथ से धनुष उठाए, दाहिने हाथ से भूमि लीप रही थी। यह देख कर जनक जी इतने आश्चर्यचकित और हर्षित हुए कि उसी क्षण उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि जो कोई वीर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उसीके साथ सीता का ब्याह होगा।

महामुनि विश्वामित्र और दूसरे वनवासी तपस्वियों को मारीच और सुबाहु जैसे राक्षस बहुत तंग करते थे। ये राक्षस उपद्रव करके मुनियों के यज्ञानुष्ठान में बाधा करते रहते थे। अन्ततः बहुत तंग होने पर विश्वामित्र ने अयोध्या के राजा दशरथ के दरबार में उपस्थित हो कर उन्हें राक्षसों के अत्याचार का वृत्तान्त कह सुनाया और राक्षसों के नाश के लिए राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण को साथ ले कर वन में लौटे। मुनि विश्वामित्र के साथ अभियान पर निकले राम-लक्ष्मण का सामना सर्वप्रथम राक्षसी ताड़का के साथ हुआ जिसे एक ही बाण में श्रीराम ने धराशायी कर दिया। ताड़का राक्षसी के वध का समाचार सुन कर मारीच अपने सहयोगी राक्षसों के साथ आ डटा। श्रीराम ने उसे भी मार कर समुद्र पार भगा दिया। फिर राम ने सुबाहु को मारा। लक्ष्मण ने मारीच के साथ आए राक्षस-सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मण ने राक्षसों को मार कर तपस्वियों को निर्भय कर दिया। इसके बाद दोनो भाई गुरु के साथ मिथिला के लिए प्रस्थान किया, जहाँ जनक-नन्दिनी सीता के स्वयंवर का आयोजन होने जा रहा था।





मिथिला आगमन पर विश्वामित्र सहित राम-लक्ष्मण का भावभीनी स्वागत हुआ। राजा जनक ने उन्हें उत्तम निवास में ठहराया। अगले दिन प्रातःकाल श्रीराम और लक्ष्मण गुरु के लिए पूजा के फूल लाने जनक जी की फुलवारी में पधारे। संयोगवश सीता भी उसी समय फुलवारी स्थित पार्वती मन्दिर में पूजा कर रही थी। उनकी एक सखी ने फुलवारी में फूलपत्ती का संग्रह करते-घूमते राम-लक्ष्मण को देखा और नारी-सुलभ कौतूहलवश सीताजी को मन्दिर से बुला लिया।

फुलवारी में श्रीराम की विश्वमोहिनी श्याम छवि को देख कर सीता जी अपलक उन्हें निहारती रही। सखियाँ मन्त्रमुग्ध -सी बेसुध हो गयीं। श्रीराम की भी यही स्थिति थी। सीताजी के मुखरूपी चन्द्रमा को निहारने के लिए उनके नेत्र चकोर बन गए।

स्वयंवर का मण्डप सज-धज कर तैयार था। दूर-दूर से आए वीर राजा-महाराजाओं के आसन लगे थे। उस अवसर पर भलीभाँति शृंगार करके जब सीताजी ने रंगभूमि में पैर रखा, तब उनका दिव्य रूप देख कर सभी स्त्री-पुरुष मोहित हो गए। सीता के हाथ में जयमाल सुशोभित था। उस समय राजा जनक की घोषणा के साथ स्वयंवर का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। उद्‌घोषक भाटों ने जनक की प्रतिज्ञा को उपस्थित राजाओं के समक्ष दुहराया –

"शिवजी के विशाल धनुष को आज इस राजसभा में जो भी तोड़ेगा, जानकी जी बिना किसी विचार के उसी को वरण करेंगी।" उद्‌घोषणा सुन कर राजाओं के मन ललचा गए, किन्तु विधाता की इच्छा, बड़े-बड़े वीर थक-हार कर बैठ गए, किसी से धनुष हिला तक नहीं; उसे तोड़ना तो बहुत दूर की बात थी। सब राजा उपहास के योग्य हो गए। यह स्थिति देख कर जनक जी निराश हो बोले –

"अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी।।
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।।"

"अब कोई वीरता का अभिमानी नाराज न हो। मैंने जान लिया, पृथ्वी वीरों से खाली हो गई। अब आशा छोड कर अपने-अपने घर जाओ, ब्रह्मा ने सीता का विवाह लिखा ही नहीं।"

जनकजी के वचन सुन कर सभी स्त्री-पुरुष जानकीजी की ओर देख-देख

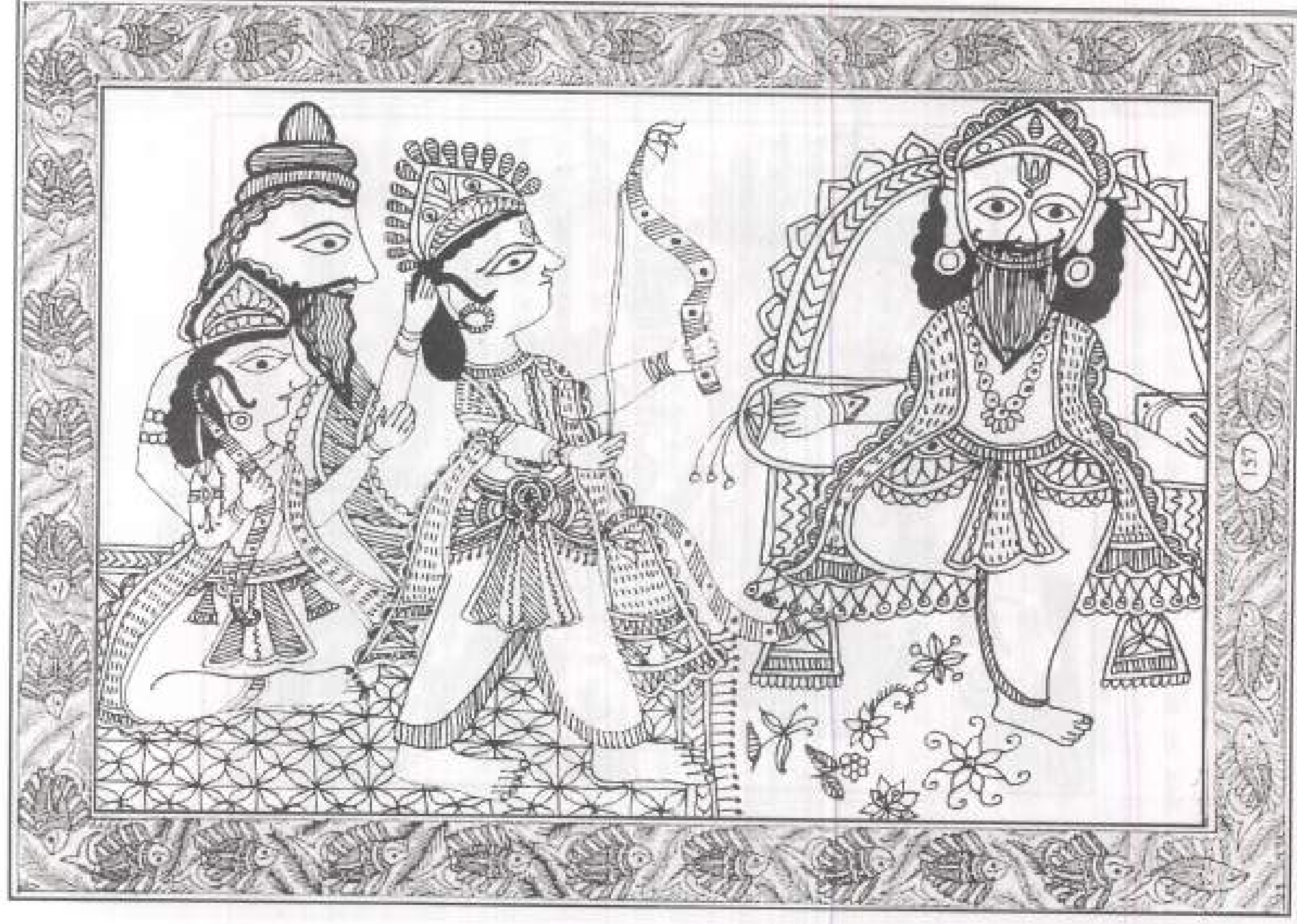
कर दुःखी हो रहे थे, किन्तु लक्ष्मणजी तमतमा उठे। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गईं, ओंठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोध से लाल हो गए। लक्ष्मण के मन का भाव समझ कर गुरु विश्वामित्र ने राम को धनुष भंग करने का आदेश दिया।

गुरु का आदेश सुन कर श्रीराम ने उनके चरणों में सिर नवा कर मन ही मन पितर और देवताओं की वन्दना करके सीताजी की ओर ताका और बड़ी फुर्ती से धनुष को उठाया, प्रत्यंचा चढ़ाई और उसे इस प्रकार झटके से खींचा कि धनुष भयंकर ध्वनि के साथ तीन टुकड़ों में खण्डित हो गया।

शिव-धनुष के टूटते ही चारों ओर आनन्द मुखरित हो उठा। जय-जयकार की तुमुल ध्वनि के साथ झाँझ, मृदंग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल और सुहावने नगाड़े बजने लगे। जहाँ-तहाँ झुण्ड के झुण्ड युवतियाँ मंगलगीत गाने लगीं। सखियाँ सीता को संग ले श्रीराम को जयमाला पहनाने आगे बढ़ीं, सीताजी ने श्रीराम के गले में जयमाला पहना दी।

इस अद्‌भुत संयोग का समाचार जब अयोध्या पहुँचा तो राजा दशरथ बारात सजा कर मिथिला आये जहाँ सीता के साथ राम का; जनकजी की दूसरी बेटी उर्मिला से लक्ष्मण का; जनकजी के भाई कुशध्वज की एक पुत्री माण्डवी से भरत और दूसरी पुत्री श्रुतकीर्ति से शत्रुघ्न का विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

विवाह के बाद सीता जीवन भर तपती ही रही — कभी लांछन की आँच में तो कभी सत्ता की आग में। अन्त में अपनी कीर्त्ति को छोड़ कर धरती की बेटी धरती में ही समा गई।





कृष्ण-लीला

मिथिला चित्र में कृष्ण-लीला से सम्बंधित चित्र भरे पड़े हैं। इन रचनाओं में कंस की मारक शक्तियों के साथ लीला, घर में माता-पिता के साथ बाल-सुलभ लीला, बाल-गोपालों के साथ क्रीड़ा, तरुणी गोप-बालाओं के साथ प्रेम-लीला, कंस के सर्वनाश की लीला, महाभारत की कूटनीतिक लीला और सबसे बढ़ कर राधा के संग रासलीलाएँ प्रमुख हैं।

कंस अपने मृत्युदाता की तलाश में निरन्तर किसी न किसी दुष्ट योजना के तहत गोकुल और मथुरा के शिशुओं का वध करता ही रहता था। एक बार कंस ने 'पूतना' नामक राक्षसी को इस योजना के साथ भेजा कि नवजात कृष्ण को दूध पिलाते हुए मार दिया जाय। उस समय कृष्ण मात्र छः-सात दिनो के थे और पालने में पड़े खेल रहे थे। उसी समय एकान्त पा कर पूतना अपने वक्ष में विष की.मोटी लेप लगा कर आयी और कृष्ण को दूध पिलाने लगी। विष्णुरूप कृष्ण ने पूतना का दूध तो पिया ही, दूध के साथ ही उन्होंने उसके प्राण भी सोख लिये।

एक बार नन्हे-से कृष्ण पालने में लेटे खेल रहे थे। उसी समय कंस का भेजा हुआ एक दुष्ट राक्षस कौवे का रूप बना कर उड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा और अपने भयानक चोंच से शिशु कृष्ण पर प्रहार करने लगा। देखते-देखते सहसा बालकृष्ण ने बाँए हाथ से कस कर उसके गले को पकड़ लिया। गला दबता गया और वेषधारी राक्षस के प्राण छटपटाने लगे। बाल भगवान ने उसे घुमा कर इतनी जोर से फेंका कि वह कंस के सभा-मण्डप में जा गिरा। 'काकासुर' के इस प्रसंग को चित्रकार 'बकासुर वध' के रूप में चित्रित करते हैं।

अपने नटखटपन - भरी चुहलबाजियों के कारण तो कृष्ण यशोदा मैया से बराबर डाँट खाते ही रहते थे। एक बार मैया ने कृष्ण की कमर में ओखल बाँध दिया।

कृष्ण का किशोर-वय जोखिम भरी अनेक लीलाओं से पूर्ण था। इसी काल में उन्होंने यमुना नदी को अपने विष से प्रदूषित करने वाले 'कालिया नाग' का दमन कर यमुना को पुनः जीवन-दायिनी बनाया; इन्द्र की पूजा के स्थान पर

पर्वत-जंगल-धरती की पूजा का प्रचलन प्रारम्भ किया। कहते हैं, कृष्ण के इस पर्यावरण-आन्दोलन से कुपित हो कर मेघों के स्वामी इन्द्र ने भयंकर मेघों को बुलाया और उन्हें आदेश दिया, ''ब्रज को डुबा दो !'' प्रलयंकारी, भयंकर, अति भयंकर वर्षा! हर तरफ त्राहि-त्राहि मच गई। क्या मनुष्य, क्या पशु–सब कुछ डूबने लगा। कृष्ण से रहा नहीं गया। एक झटके में गोवर्धन पहाड़ को जड़ से उखाड़ा और छाते से भी हल्का समझ कर अपनी एक अंगुली पर तान लिया। कई दिनो तक लगातार बरस कर बादल शान्त हो गये, इन्द्र ने हार मान ली, लोग संकट से बच गये।

भारतीय वाङ्मय कृष्ण की प्रेमलीला से समृद्ध है। मिथिला चित्र पर जयदेव (12 वीं शताब्दी) के **''गीतगोविन्द''** और मिथिला कोकिल विद्यापति (15 वीं शताब्दी) के गीतों का गहरा प्रभाव पड़ा है। आज यद्यपि कि ये गीत कम सुनने को मिलते हैं, किन्तु मिथिला के चित्र आज भी अपने अंक में उन प्रेम भरे गीतों को समेटे हैं -

''कुंज भवन सौं निकसलि रे, रोकल गिरधारी।
एकहि नगर बसु माधवरे, जनि करू बटमारी।।
छोड़ू कन्हैया मोर आँचर रे, फाटत नव सारी।
अपजस होयत जगत भरि रे, जनि करिअ उघारी।। **(विद्यापति)**

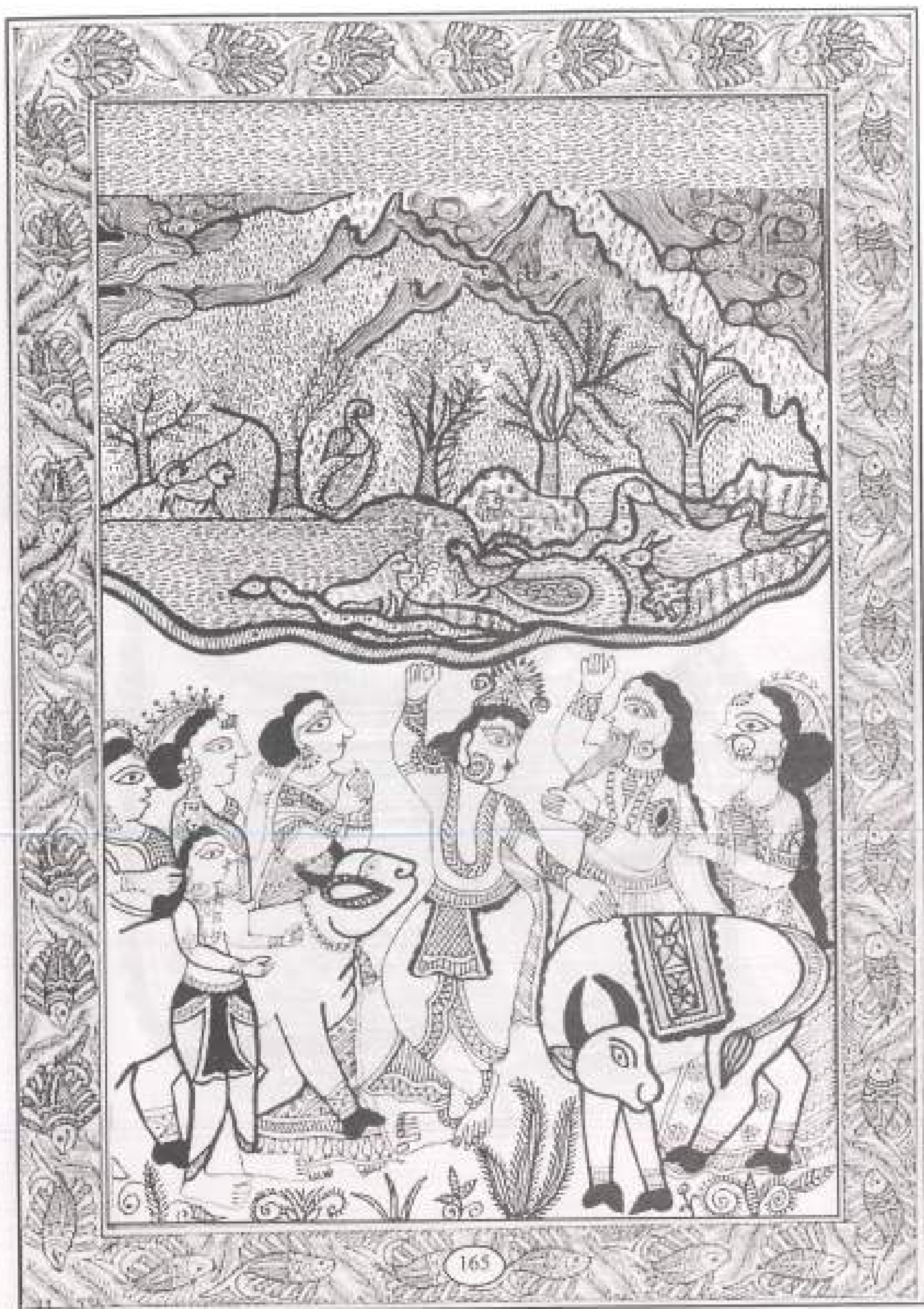
आगे के पृष्ठों में कृष्ण-लीला से सम्बंधित कतिपय चित्र दिए जा रहे हैं ताकि मिथिला चित्र के छात्रों का मार्गदर्शन हो।



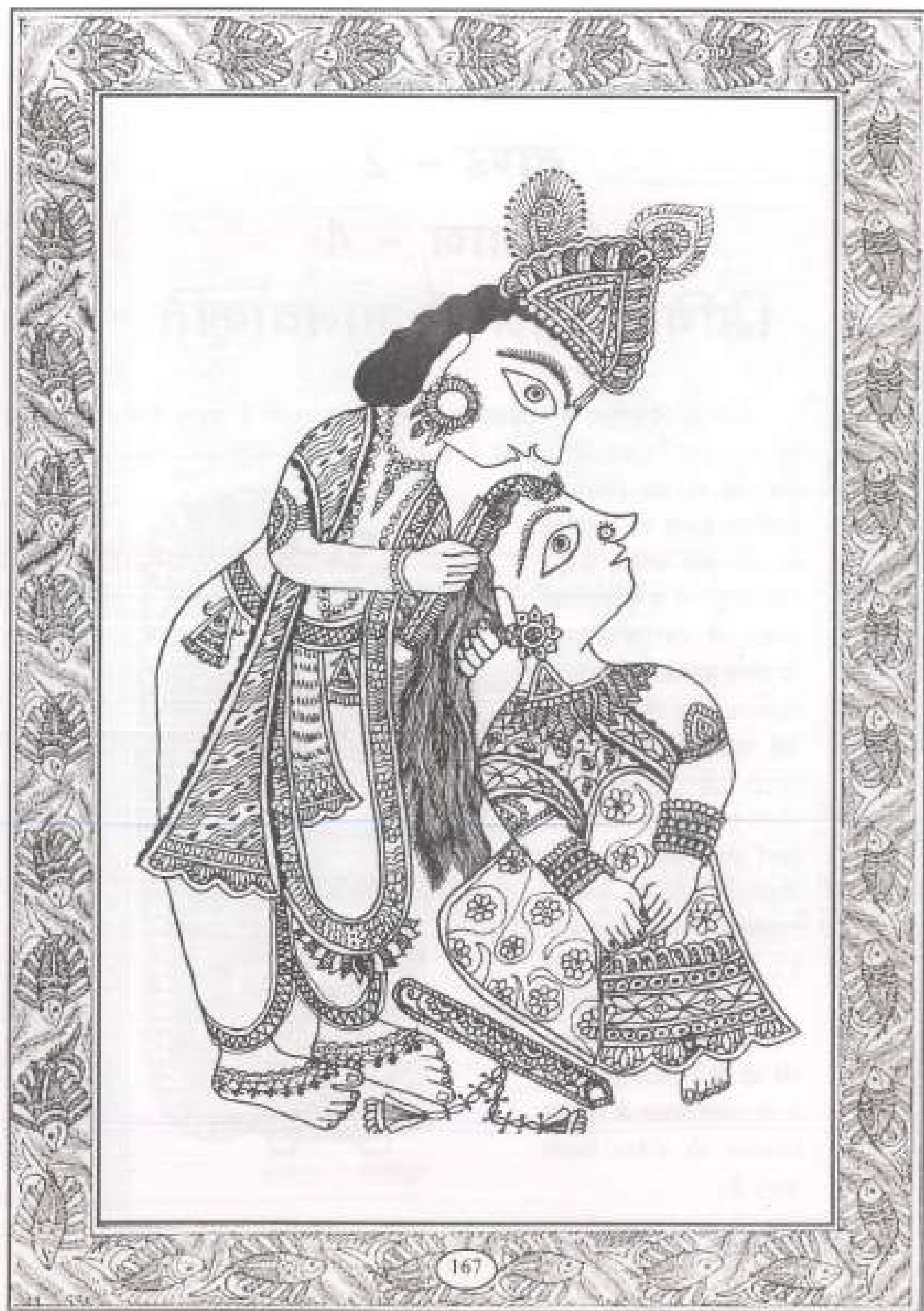












खण्ड - 2

अनुभाग - 4

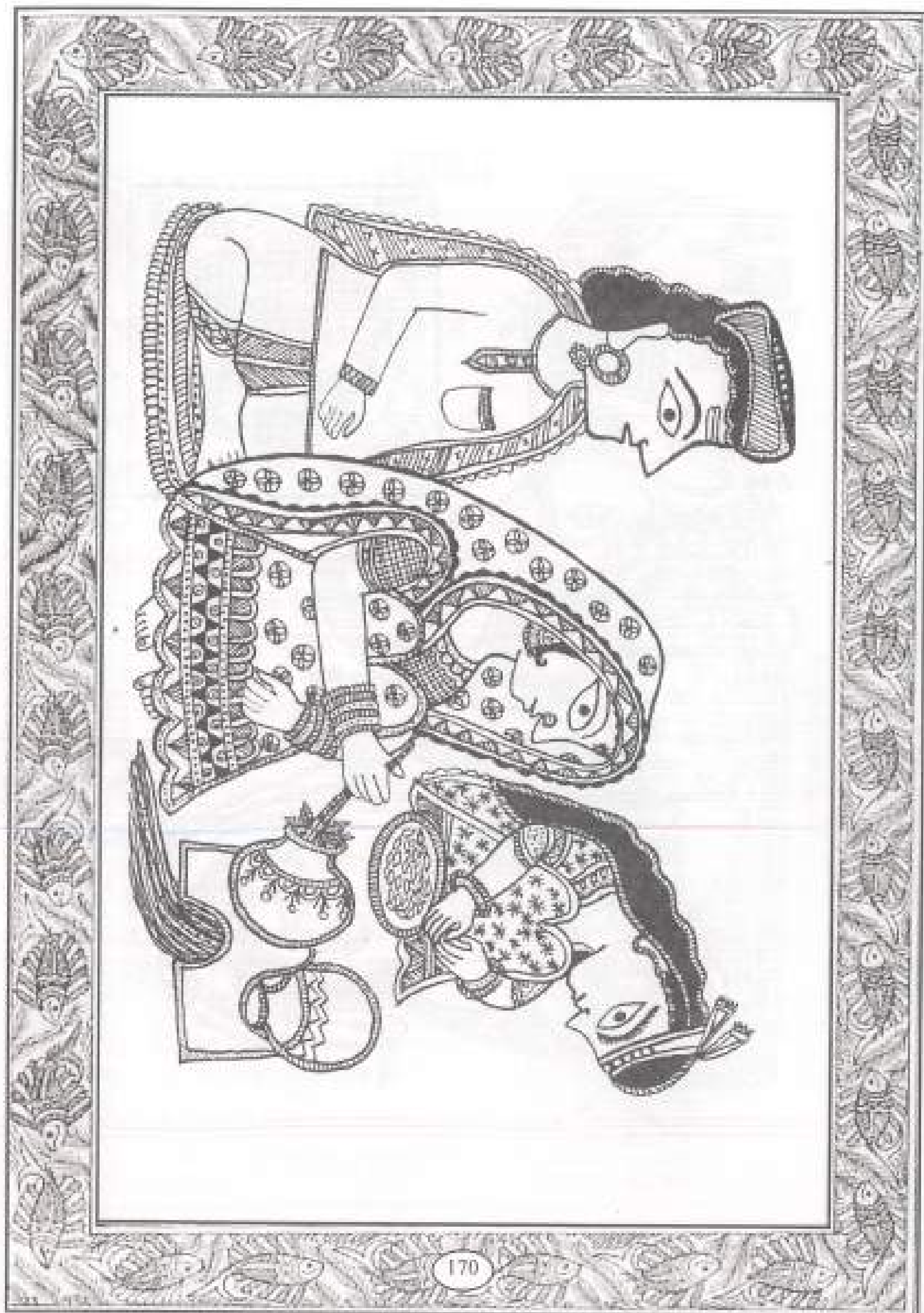
मिथिला चित्र में मानवाकृति

मिथिला चित्र-कला में व्यावसायिक अभ्युदय सन 1970 से प्रारम्भ हुआ जब यह कला मिथिला की वीथियों से निकल कर वैश्विक पटल पर आयी। मूल रूप में यह चित्रकला पौराणिक प्रसंगों पर आधारित थी और इसी कलेवर में इसे पश्चिमी दुनिया के व्यावसायिक बाजार ने स्वागत किया। पौराणिक प्रसंगों से लिपटी यह चित्रकला रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों के सौरभ से लिपटी रही और आज भी, जबकि इसकी व्यावसायिक यात्रा अपने चौथे दशक में है, इसके अंकन में आधुनिक वैचारिक प्रसंगों का समावेश अत्यल्प ही है।



आगे के पृष्ठों में कतिपय वैवाहिक प्रसंगों से सम्बंधित चित्र रखे जा रहे हैं। छात्र इन प्रसंगों से भी अपने विचार के अनुसार चित्रांकन की प्रतिभा निखार सकते हैं।











खण्ड – 2

अनुभाग – 5

मिथिला चित्र में दानवाकृति

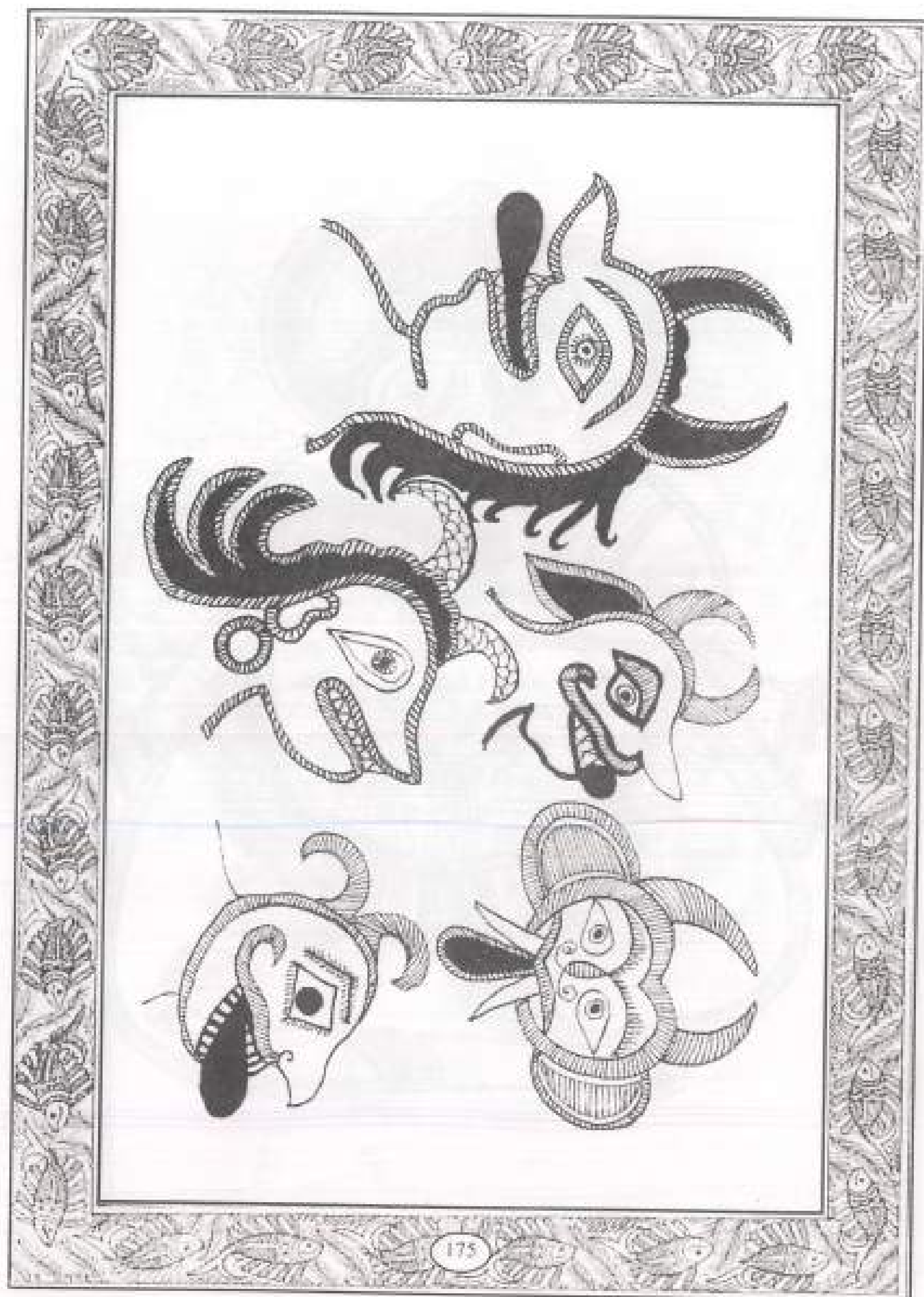
पौराणिक परम्परानुसार कश्यप और दिति की सन्ताने दैत्य, दानव, राक्षस या असुर कहलाये, जबकि कश्यप और अदिति की सन्ताने देवता या सुर कहलाये। पौराणिक साहित्य और दन्त कथाओं में 'राक्षस' शब्द मनुष्य और देवताओं के शत्रु के रूप में प्रयुक्त हुआ है। रामायण-काल तक आते-आते आर्यों के दास या दस्यु शब्द अशुभ-सूचक दैत्य के रूप में प्रयोग होने लगे। वस्तुतः यह अनार्यों के प्रति आर्यों के मन की घृणा ही थी जो इस रूप में फूटी और उन्होंने 'राक्षस' के रूप में कल्पित पात्रों से धर्म-शास्त्रों की रचना की।

राक्षसों को काला-कलूटा, बेतरतीब बड़े-बड़े दाँतों वाला, भयंकर शरीर वाला, नरभक्षी के रूप में दिखलाया गया है। मिथिला चित्र में राक्षस प्रतीकों की रचना मुख्यतः रामायण-कथा के प्रसंगों में और कृष्ण-लीलाओं में कंस तथा उसकी मारक शक्तियों को राक्षस रूप में दिखलाया जाता है। पौराणिक उल्लेखों के अनुसार, राक्षसों के भी सुन्दर कन्याएँ होती थीं जिनका मनुष्यों से विवाह होता था। रावण की पत्नी मन्दोदरी इतनी सुन्दर थी कि उसे देख कर हनुमान को भ्रम हो गया कि कहीं यही तो सीता नहीं है। सीताजी के स्वयंवर में रावण भी आया था। जनकजी के प्रण के अनुसार यदि वही धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देता तो उसी के साथ जानकी का विवाह होता। दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के साथ आर्य राजा ययाति का विवाह हुआ था। राक्षस भी मनुष्यों की ही एक जाति थी जो लंका, दण्डकारण्य, जनस्थान और रसातल (सम्भवतः वर्तमान मैक्सिको) में रहती थी।

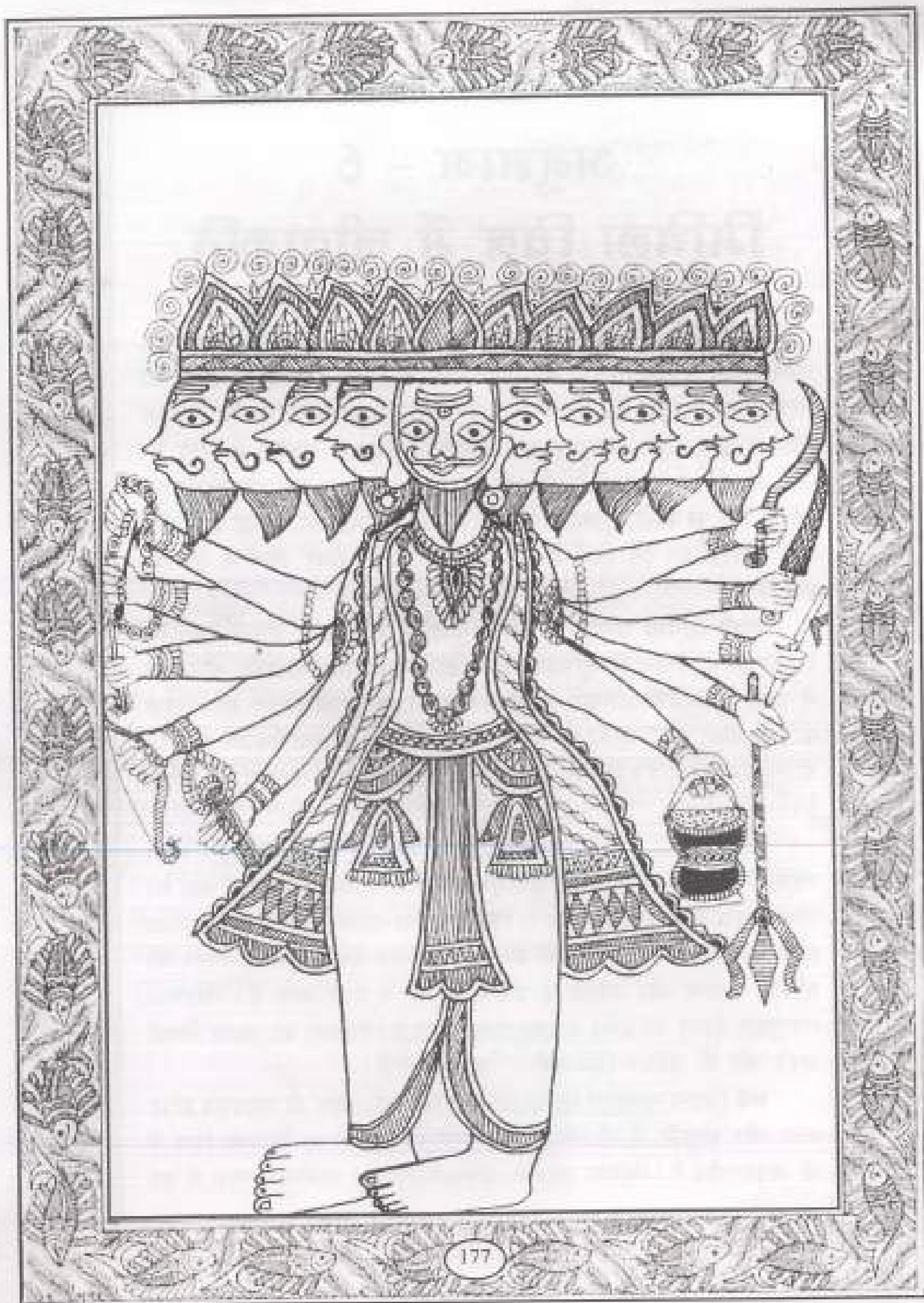
एक स्थान पर रावण ने कुम्भकर्ण, खर आदि का परिचय इस रूप में दिया है–

"सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः।

ऊषुः पित्रा सह रता गन्धमादनपर्वते।।" "वे सभी वेद के पण्डित, शूरवीर और अच्छे चरित्र वाले हैं तथा अपने पिता के साथ गन्धमादन पर्वत पर रहते हैं।"







अनुभाग – 6
मिथिला चित्र में जीवाकृति

परम्परागत मिथिला चित्र में पशु-पक्षी, कीट-पतंगे आदि जीवों की संख्या अधिक नहीं है। चित्र-रचना में प्रयुक्त सभी जीव एक तरह से चित्रलिपि की तरह प्रतीकार्थक हैं। इन जीवों से जुड़ी महत्वपूर्ण सूचना यह है कि मिथिला चित्र के प्रायः सभी जीव-जन्तु प्रागैतिहासिक सिन्धुघाटी सभ्यता से आये हैं। उक्त सभ्यता के उत्खननों से जो मूहरें, मुद्राएँ, पट्टिकाएँ, मूर्तियाँ और चित्र प्राप्त हुए हैं, उन पर हाथी, मत्स्य, सर्प, मोर, कबूतर, वृषभ, सिंह, बिच्छू, शंख जैसे जीव उत्कीर्ण हैं। इन जीवों में से अधिकांश इकट्ठे 'कोवर' चित्र में उपलब्ध होते हैं।

हाथी कायस्थ समुदाय के समस्त वैवाहिक विधियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विवाह के मण्डप पर कुम्भकार द्वारा निर्मित हाथी रखा जाता है; कोवरचित्र में हाथी का अंकन अनिवार्य है; गोबर-माटी से एक हाथी विशेष साज-सज्जा के साथ तैयार करके कोवर-घर में रखा जाता है, जिस पर नवविवाहिता प्रतिदिन गौरी-पूजन करती है। मिथिला चित्र में हाथी शान्ति और सौभाग्य का प्रतीक है।

मत्स्य समस्त मैथिल धर्म, संस्कृति और कला में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मिथिला में माछ को शुभ-सूचक और सौभाग्य-दायिनी कहा गया है। लोकमान्यता है कि कहीं की यात्रा पर निकलते समय मछली देखना सफलता-दायक होता है। मिथिला चित्र में मछली को इच्छा की तरह चंचल, जलमय जीवन की संगिनी, आनन्द और उर्वरता के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। पौराणिक मतानुसार, विष्णु का प्रथम अवतार मत्स्यावतार है। मिथिला की सधवा स्त्रियाँ अपने पति के जीवित रहने तक ही माछ खाती हैं।

सर्प जितना महत्वपूर्ण सिन्धुघाटी सभ्यता में था, उतना ही महत्वपूर्ण द्रविड़ कला और संस्कृति में भी रहा है और उसी परम्परा में यह मिथिला चित्र में भी अनुकरणीय है। मिथिला संस्कृति, दन्त-साहित्य और धार्मिक परम्परा में सर्प

को रक्षक और सौभाग्यदाता कहा गया है। मिथिला में नवविवाहिता स्त्री के साथ सधवा स्त्रियाँ भी स्रावन मास में विशेष समारोह पूर्वक मधुस्रावनी व्रत-पूजा का आयोजन करती हैं, जो लगभग पन्द्रह दिनों तक चलता है। यह सर्पों की पूजा है। इसके अलावा नाग-पंचमी के दिन घर-घर में सर्प की पूजा होती है। विद्यापति के गीतों में सर्प को उग्र कामोत्कर्ष का प्रतीक कहा गया है।

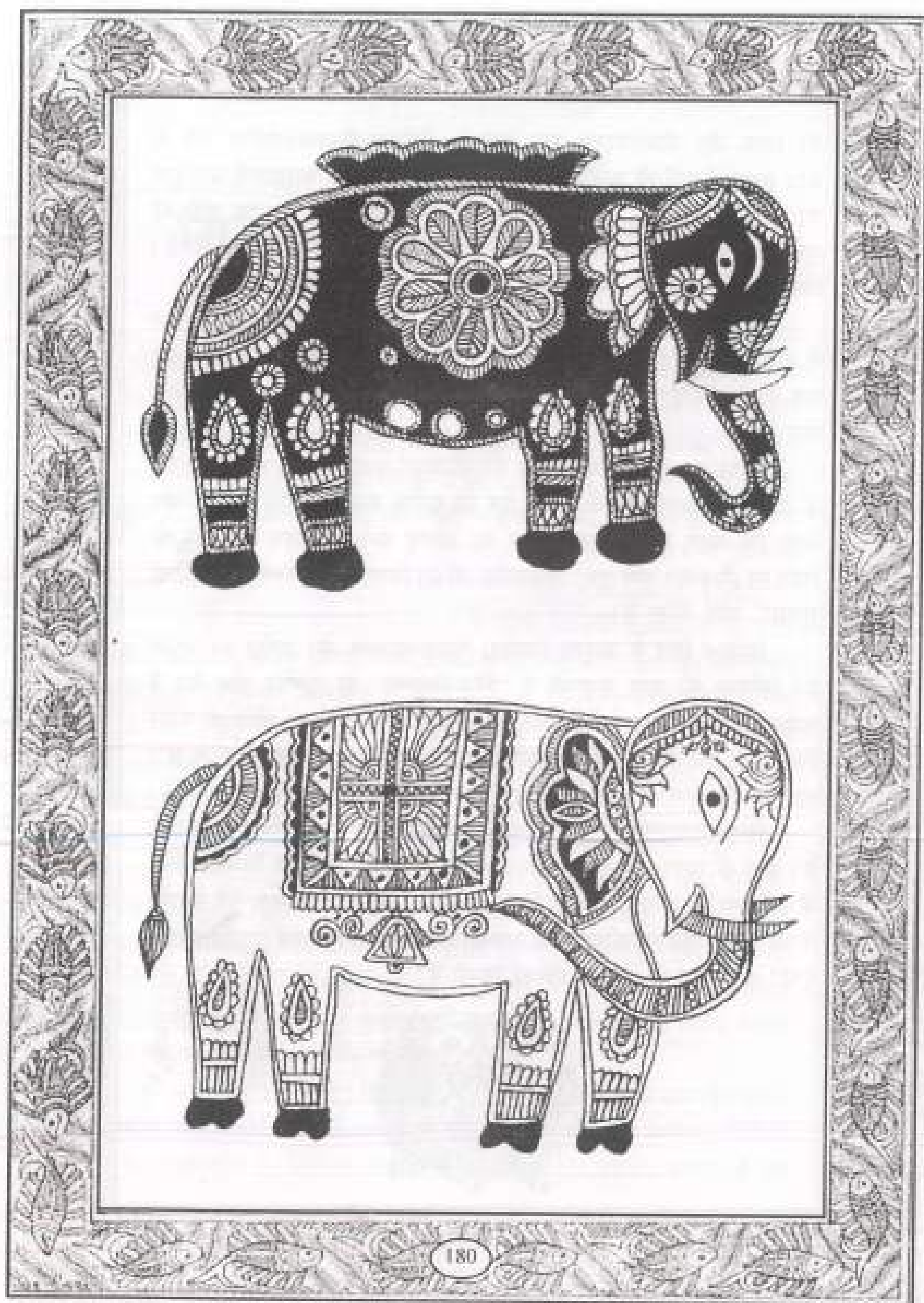
मोर शान्तिमय सुखद जीवन का प्रतीक है। मिथिला के कृषि-प्रधान समाज में मोर का इस बात से भी महत्व है कि उसे मेघ के साथ प्रेम-सम्बंध है। प्रकट रूप में मोर मिथिला में नहीं पाए जाते पर चित्रकला में मोर को प्रेम-सखा कहा गया है।

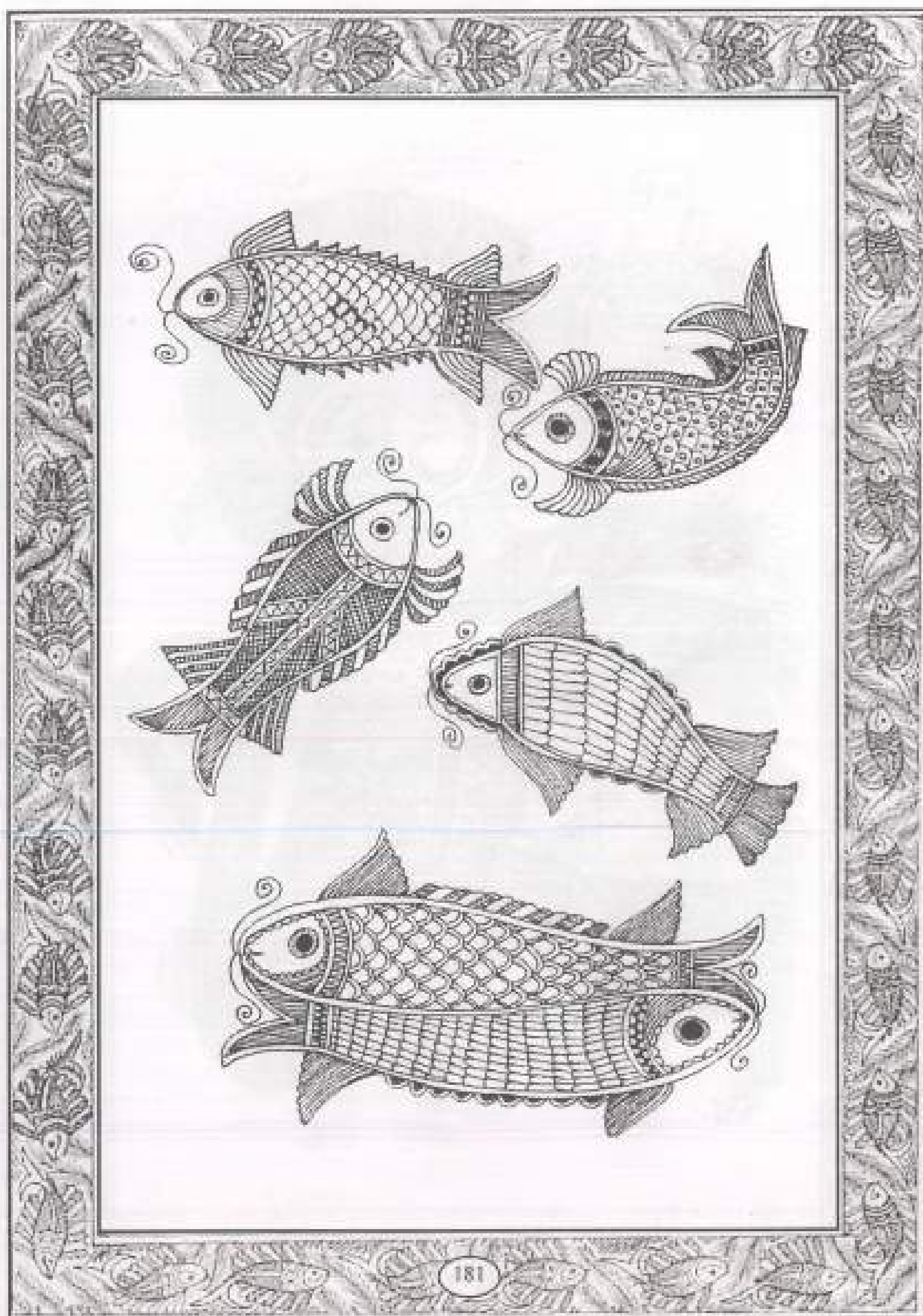
सुग्गा या **शुक** मिथिला चित्र का महत्वपूर्ण पक्षी है जो प्रेम और सौन्दर्य के देवता का वाहन होने के कारण प्रेम का प्रतीक कहा गया है। हरे पंख और लाल ठोर वाला सुग्गा प्रेममय मैथुन का द्योतक होने के कारण कोबरघर की भित्ति पर (मैथुनरत युग्म शुक) अनिवार्यतः अंकित किया जाता है जिसे **''लटपटिया सुग्गा''** कहा जाता है।

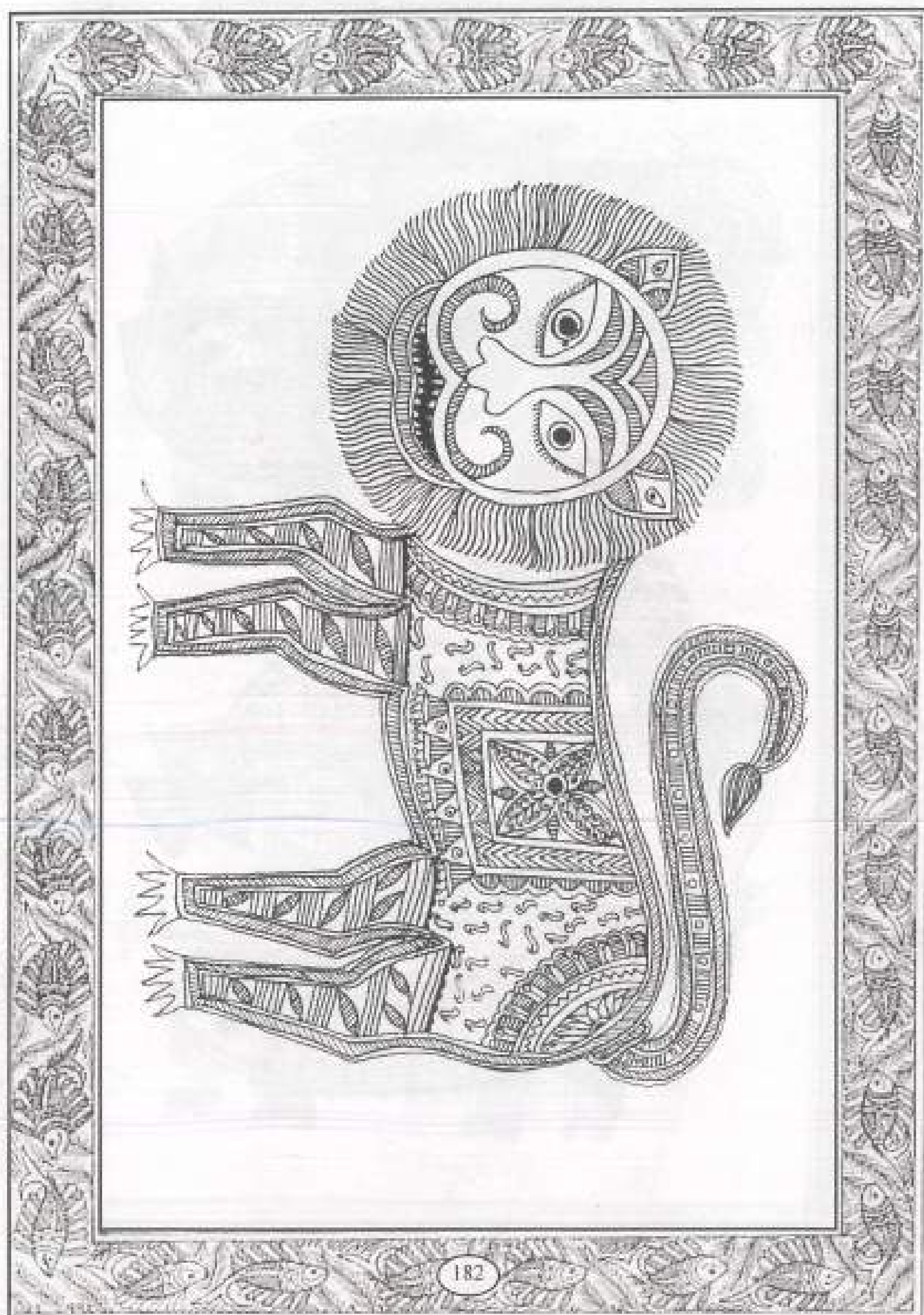
मिथिला चित्र में **कबूतर** (कपोत) ममता-वात्सल्य और शान्ति का प्रतीक है। मिथिला की दन्त कथाओं में ''बिध-बिधाता'' का उल्लेख हुआ है। ये कपोतरूप हैं। 'बिध' (विधि) ममतामयी स्त्री है और 'बिधाता' सृष्टि के कठोर नियमों से बंधा पुरुष। 'बिध-बिधाता' समस्त जीवों के, उनके जन्म से छठी रात को चित्रगुप्त के साथ मिल कर, भाग्य-अभाग्य का लेख तैयार करते हैं।

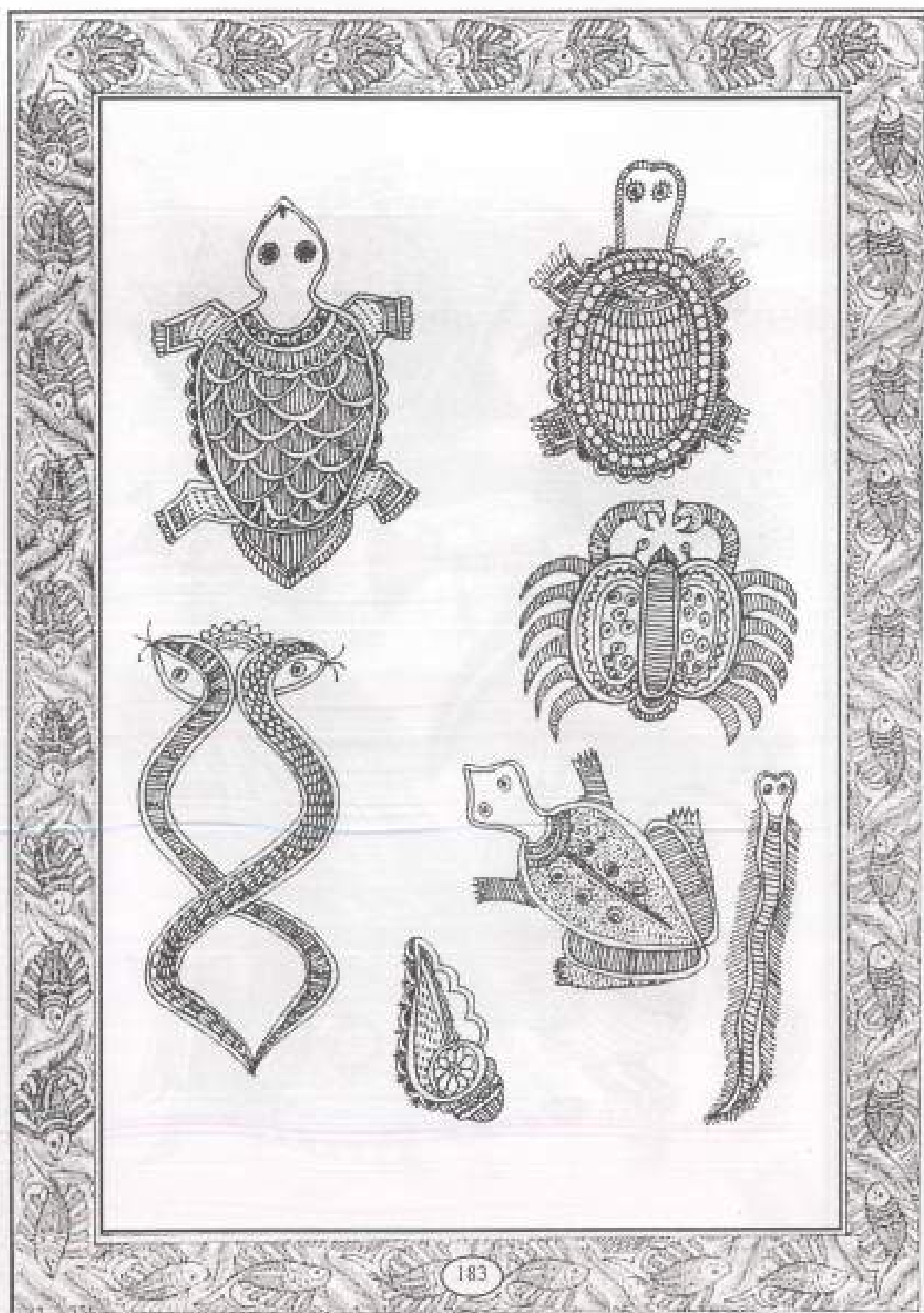
सिंह आद्याशक्ति दुर्गा का वाहन है और इस रूप में शक्ति का प्रतीक है। सिंह के ऊपर कमलासन और उस पर भगवती ! मिथिला चित्रकार सिंह के इसी रूप की कल्पना करते हैं किन्तु वे सिंह को हिंस्र या भयानक नहीं मानते। वे इसे विविध रंगों से चित्रित करके अपनी भित्ति पर सजाते हैं और ''दुर्गतिनाशिनी दुर्गा'' के वाहन के रूप में रक्षिका मानते है।



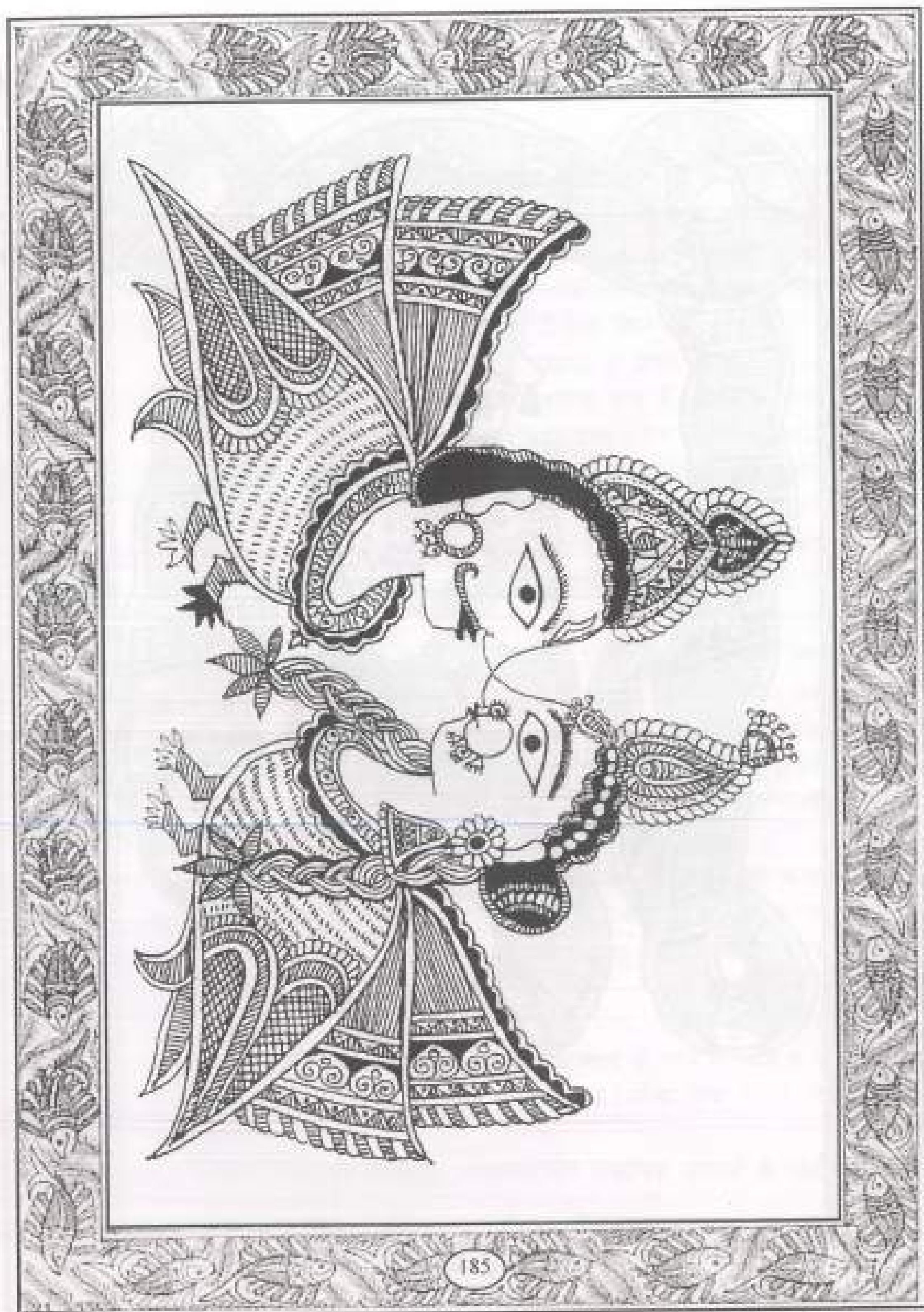














शंख मिथिला कला और धर्म दोनों में विशिष्ट प्रतीक है। मिथिला की चित्रकार स्त्रियाँ समुद्र की बेटी लक्ष्मीजी को अपनी बहन मानती हैं और उनके भाई शंख को अपना भाई। मिथिला में समस्त धार्मिक कृत्य शंख-ध्वनि से प्रारम्भ होते हैं। कहते हैं, जहाँ तक शंख की ध्वनि सुनाई पड़ती है, लोगों के दैहिक-दैविक दुःख दूर हो जाते हैं; ''शंख बाजे, बला भागे।'' जहाँ विष्णु की उपस्थिति होती है, वहाँ शंख भी अवश्य होता है। इस रूप में शंख विष्णु का प्रतीक है।

कच्छप का उपयोग मिथिला चित्र में मुख्यतः दो प्रसंगों में होता है -- एक तो कच्छपावतार दर्शन में और दूसरा वैवाहिक तन्त्र में। वैवाहिक तन्त्र में कच्छप अनेक मान्यताओं के आधार पर काम-जन्य प्रतीक है। माना जाता है कि कछुए का जीवन सुदीर्घ होता है; वह धीमी गति के कारण धैर्य-सम्पन्न माना जाता है; उसके धैर्य की स्थिति यह है कि वह महीनों-महीनों तक सूखी निर्जल मिट्टी के तले बिना अन्न-जल-हवा के पड़ा रहता है और वर्षा होने पर बाहर आता है; वह उभचर है-- जल में भी, थल में भी; मूड़ी (धर) निकाले हुए कच्छप के आकार को ''लिंग-योनि-संयुक्ता'' कहा गया है। इन्हीं विशिष्टताओं के कारण मैथिल विवाह में, कछुए की खोपड़ी में सरसों के तेल में बाती रख कर दीप बनाया जाता है। वर-वधू का परिछन करते हुए उस कच्छपदीप का प्रकाश हाथ में लगा-लगा कर स्त्रियाँ दुलहा-दुलहिन का अभिषेक करती हैं ताकि वर-वधू को कछुए की उमर लग जाय और एक संग दीर्घ जीवन जीते हुए, सधैर्य काम-सुख भोग करें। वैवाहिक चित्र ''कोबर'' में कच्छप की उपस्थिति अनिवार्य होती है।

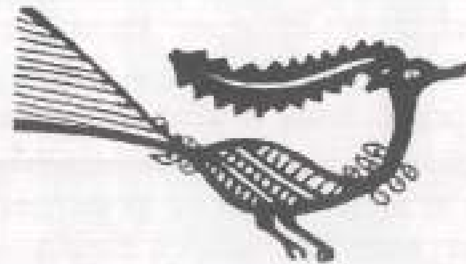
मिथिला दन्त-कथा में विष्णु के कच्छपरूप अवतार का कारण यह माना जाता है कि इसके द्वारा ईश्वर को सम्भोग द्वारा सृष्टि का गुण प्रदर्शित करना था। पृथ्वी जब रसातल में थी उस समय कच्छपरूप विष्णु ने उसके साथ सम्भोग करके नरकासुर को जन्म दिया।

कोबर चित्र में प्रदर्शित अन्य जीव जैसे बिच्छू, मेढ़क, काँकोर उर्वरता और जल की महत्ता को उजागर करते हैं। मकरकेतु कामदेव के ध्वज में स्थित होने के कारण 'मगर' को काम-जन्य प्रतीक माना गया है। कोबर चित्र में इसे भी स्थान प्राप्त है।

मिथिला चित्र की नागकन्या दन्तकथा और पौराणिक कथाओं से आई

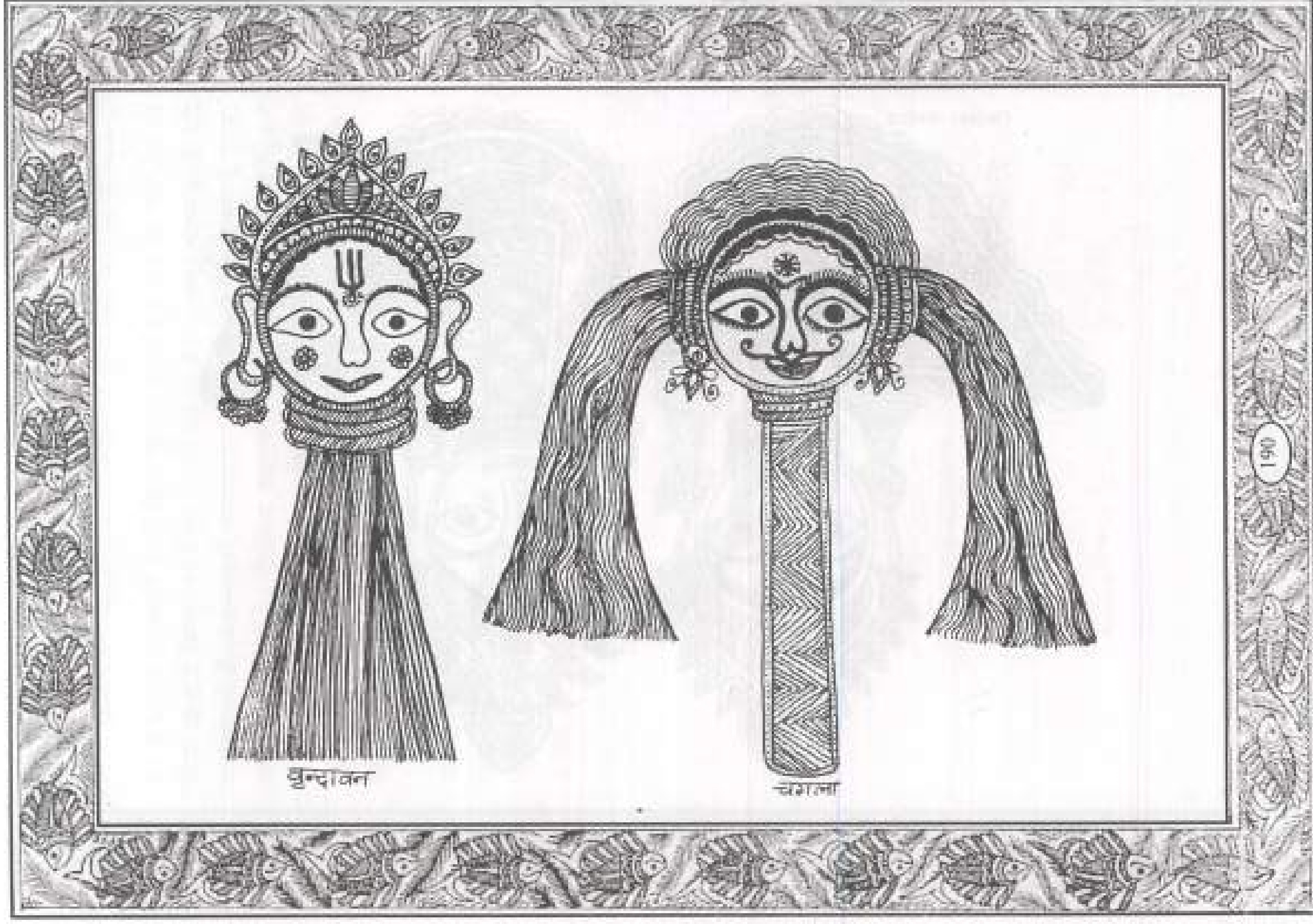
है। नागकन्या को यद्यपि कि मिथिला चित्र में मानवीकृत नाग की तरह चित्रित किया जाता है किन्तु इसका पूर्ण मानवी रूप भी है। रहस्यमय घटनाओं से भरी दन्तकथाओं में इच्छारूपधारी, सम्मोहिनी, अत्यन्त रूपवती स्त्री के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। पौराणिक कथाओं में भी नागकन्या का उल्लेख मिलता है। नागकन्या उलूपी से अर्जुन का विवाह हुआ था। कृष्ण के रनिवास में भी नागकन्याएँ थीं। इससे स्पष्ट होता है कि ये वस्तुतः सर्प-योनि की नहीं थीं। सम्भव है कि नागकन्याएँ किसी नाग-जाति से सम्बंधित थीं।

परम्परागत मिथिला चित्र में घोड़े और गाय का अभाव है, किन्तु पौराणिक साहित्य में गाय को अत्युच्च स्थान दिया गया है। मिथिला की दन्तकथाओं में एक गाय का उल्लेख आता है जो पंखधारी है, ममतामयी है और वनदेवी की सखी है। वह वन में भूले-भटके लोगों या संकट में फँसे लोगों को "वनसप्तो" के रूप में सहायता करती है।



हड़प्पा कालीन चित्रित मोर


चकेवा
श्यामा (सामा)


वृन्दावन
चुगला

सामा-चकेबा

"**सामा-चकेबा**" मिथिला लोक-कलाओं का संगम-तीर्थ है, जहाँ मृण्मूर्ति-कला, लोकगीत, प्रेमगाथा, सामाजिक परम्परा और भाई-बहन का निर्मल प्रेम सदेह साकार होते हैं। किसी 'गीत-नाटिका' की तरह मैथिल स्त्रियाँ, (दिवाली के बाद) भातृ-द्वितिया से ले कर कार्तिक पूर्णिमा तक, प्रत्येक रात इस खेल का आयोजन करती हैं। बाँस के बने डाले में कच्ची मिट्टी, पटसन, संठी, फूस और बाँस के फट्टे से तैयार की गई सामा, चकेबा, साम्ब, चुगला, भौंरा, डिहुली, वृन्दावन, सतभैया रखे जाते हैं। ये सभी पात्र मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, कीट और रास्ता हैं, जिनका मिथिला मृण्कला में मानवीकरण हुआ है।

इस खेल की सामा बहन का भाई साम्ब है, चकेबा या चक्रवाक पक्षी सामा का पति है, चुगला और डिहुली पति-पत्नी हैं जो कृष्ण के घरेलू नौकर हैं, वृन्दावन वन है, बाटो बहिन रास्ता (पथ) है, भौंरा है, सतभैया (सात भाई) है और स्वयं लोकगीत देह धारण कर इस खेल में उपस्थित रहते हैं।

कथा है कि भगवान कृष्ण की पत्नी जाम्बवती से उत्पन्न बेटी श्यामा हर रोज वृन्दावन घूमने जाती थी। इसी क्रम में उसे किसी से प्रेम हो गया। इस बात की आधी-अधूरी जानकारी कृष्ण की घरेलू नौकरानी डिहुली को हो गई। डिहुली समझती थी कि श्यामा वृन्दावन में रहने वाले ऋषियों के साथ रास-रंग में लीन रहती है। डिहुली ने इस रहस्य को अधिक भयंकर बना कर अपने पति चुगला से बताया। चुगला उस व्यक्ति को कहा जाता है जो किसी के पेट की बात जान कर दूसरों के आगे उस बात को 'रहस्य' की तरह प्रकट कर देता है, अर्थात दूसरों से उसकी चुगली इस प्रकार करता है कि दो पक्षों में अनायास वैर, कलह, ईर्ष्या और शत्रुता का बीजारोपन हो जाता है।

एक दिन चुगला ने कृष्ण से उनकी बेटी श्यामा के प्रेम-प्रसंग की चुगली कर दी। चुगला ने कृष्ण को बताया कि घूमने के बहाने श्यामा नित्य वृन्दावन जाती है और वहाँ के ऋषियों के साथ प्रेम-क्रीड़ा करती है। उसने यह भी बताया कि श्यामा को इस काम में वृन्दावन, वृन्दावन जाने वाले रास्ते (बाटो बहिन) और भौंरा – सभी मदद करते हैं। जब भी अवसर मिलता था, चुगला किसी

न किसी तरह और अधिक नमक-मिर्च लगा कर कृष्ण से चुगली किया करता था। उस समय श्यामा का भाई साम्ब परदेश गया हुआ था। चुगले की चुगलपन से क्रोधित हो कर श्यामा और ऋषियों को कृष्ण ने शाप दे दिया – ''तुम लोग पक्षी बन कर वन-वन घूमते रहो।''

कृष्ण के शाप से श्यामा 'सामा' पक्षी बन गयी। सात ऋषि भी पक्षी बन गए। सामा अब कैसे अपने प्रेमी से मिले? श्यामा के प्रेमी ने ऋषियों से प्रार्थना की, ''हे ऋषिगण, आप सब अपने तपोबल से मुझे भी पक्षी बना दें ताकि मैं अपनी प्रेमिका से मिल सकूँ।'' ऋषियों ने विकल प्रेमी पर दया करके उसे भी पक्षी बना दिया। अब सामा-चकेवा दोनो खुशी-खुशी वृन्दावन में साथ रहने लगे। पक्षी का जीवन, सर्दी-गर्मी, आँधी-वर्षा, सामा-चकेवा लाख दुःखों के साथ शापित जीवन बिताने लगे, लेकिन इतने पर भी दुष्ट चुगले को सन्तोष नहीं हुआ।

एक दिन चुगला को पता लगा कि वृन्दावन में सामा अपने प्रेमी चकेवा के साथ रहती हुई पहले से भी अधिक सुखी हो गई है। उसे इस बात से और भी जलन होने लगी। उसने बहुत चाहा कि सामा-चकेबा को किसी तरह मार दिया जाय लेकिन चंचल पक्षी उसके हाथ नहीं लगे। अन्त में हार-खीज कर उसने वृन्दावन में आग लगा दी। उसी समय संयोग से सामा का भाई साम्ब परदेश से घर वापस आ गया। घर में हर जगह खोजा, उसे श्यामा बहन कहीं नहीं मिली। बाटो बहन और भौंरे ने साम्ब को सब कुछ बता दिया। साम्ब दौड़ा-दौड़ा वृन्दावन आया। वहाँ सब कुछ धू-धू जल रहा था। साम्ब ने पहले वृन्दावन की आग बुझायी, फिर अपनी बहन और बहनोई को खोज कर लाया। पक्षी बने बहन-बहनोई की दशा देख कर बहुत दुःखी हुआ। उसने अपने पिता कृष्ण की बहुत प्रार्थना की। दयालु कृष्ण का ह्रदय पसीज गया। कृष्ण ने सामा और चकेबा को शाप से मुक्त कर दिया। अपने भाई की सहायता से सामा फिर से मनुष्य का जीवन पा सकी और अपने पति के साथ सुख से रहने लगी।

इस कथा को आधार बना कर मिथिला की स्त्रियाँ कार्तिक मास में कच्ची मिट्टी से सामा बना कर अपने भाइयों के नाम से गीत गाती हैं, उनके यश-वैभव की कामना करती हैं और उनके दीर्घायु होने की भगवान से प्रार्थना करती हैं। इस खेल में चुगला अपने स्वभाव के कारण सबों से गाली ही सुनता रहता है लेकिन वह दुष्ट आपको आज भी कहीं मिल सकता है, अपने ही अगल-बगल में !





लोक कला को 'जीवन और शिक्षण' का
माध्यम बनाने में साधनारत गुरु-शिष्या

कृष्ण कुमार कश्यप

शशिबाला
पिता : श्री उग्रनारायण लाल (बरहेता)
पति : प्रो. श्री उमेश कुमार कंठ (बिसहथ)

भारती विकास मंच, बरहेता, लहेरिया सराय, दरभंगा